वर्ष ६, अंक ७

श्रीकृष्णाय नमः

चैत्र पूर्णिमा १९८८

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

Gita Press, Gorakhpur

श्रीकृष्ण-सुदामा मिलन

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका ।

वर्ष ६ | श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, पूर्णिमा चैत्र सं० १९८९ | अंक ७ पूर्ण संख्या ६७

## वेदोपदेश

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत तत्रा ।
हतास्त्रीणि शतानि शंकवः षष्टिश्च खीला अविचाचलाये ॥ १ ॥

बारह परीघ हैं तीन नाभि हैं वहां जो तीन सौ शंकु न हिलने वाले और साठ कील रक्खे हैं। ऐसा जो एक चक्र है कौन निश्चय से उसे जानता है ॥ १ ॥

तिर्यग्विलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तीस्मन् यशो निहितं विश्व रूपम् ।
तदा सत् ऋषयः सप्त साकं ये अस्य गोपा महतो बभुवुः ॥ २ ॥

जिसका मुँह तिरछा है जिसका तला ऊपर है, ऐसा चमचा या कटोरा जो है, उस में सब जगत का रूप बनाने वाला यश रखा है। वहां साथ ठहरते हैं सात ऋषी जो इस के रक्षक बने हैं ॥ २ ॥

या पुरस्ताद् युज्यते या च पश्चाद्या विश्वतो युज्यते या च सर्वतः ।
यया यज्ञः प्राङ् तायते तां त्वा पृच्छामि कतमा सर्चाम् ॥ ३ ॥

जो पहले उपयोग की जाती है, जो पीछे से उपयोग की जाती है, जो सर्वत्र उपयुक्त होती है। जिस से यज्ञ आगे बढ़ता है। वह ऋचा तुम से पूछता हूं वह कौनसी है ॥ ३ ॥

**प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरदृश्यमानो बहुधा विजायते।**
**अर्धेन विश्वं भुवने जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥ ४ ॥**

न दीखने वाला प्रजाओं का पालक सब के मध्य के अन्दर व्यापता है और अनेक प्रकार से (विविध रीति से) परिवर्तन करता है आधे से सब जगत उत्पन्न किया जो इस का दूसरा आधा है उस का वह कौनसा चिन्ह है ॥ ४ ॥

**इयं कल्याण्यजरा मर्त्यस्यामृता गृहे।**
**यस्मै कृता शये स यश्चकार जजार सः ॥ ५ ॥**

यह देवता कल्याण करने वाली बुड्ढी न होने वाली और मरने वाले के घर में न मरने वाली है जिसके लिये यह कार्य करती है, वह कार्य करता है, कृत कार्य होता है और जो सोता है वह जीर्ण होता है ॥ ५ ॥

---

# भगवद्भक्ति

[ ले० श्री स्वामी भोले बाबा जी ]

## कथा रघुनाथ गोसाईं जी की।

रघुनाथ गोसाईं की भक्ति और उनके भाव की बड़ाई किस से कही जाय की जिनकी सेवा आप भगवत् ने की। यह सदा भगवत् की परिचर्या में लगे रहते थे, उत्कल देश के रहने वाले थे, धन संपत्ति उनके घर में बहुत थी, सबको असार समझ कर जगन्नाथपुरी में रहने लगे। इनके पिता पुत्र के स्नेह से कुछ द्रव्य और सामान इनके खर्च के लिये भेजते परन्तु यह कुछ अंगीकार नहीं करते थे, केवल भगवत् रूप के रस में छके हुए अपने गुरु महाप्रभु जी की सेवा में तत्पर रह कर और श्री-जगन्नाथराय स्वामी के दर्शन करके भले बुरे और उष्ण शीतल काल के धर्मों से अलग रहते थे। एक बार जाड़े के दिनों में ठंड लगी। श्रीजगन्नाथराय स्वामी ने कृपा करके अपनी निज सेवा की बानात दी। फिर एकबार इनको अतीसार का रोग हुआ। श्रीजगन्नाथराय जी ने जैसे माधवदास जी की सेवा की थी, इसी प्रकार इन गोसाईं जी की सेवा की। जब गुरुनेइनको वृन्दाबनवास की आज्ञा दी, तब यह श्रीवृन्दाबन में आये और राधाकुण्ड पर इन्होंने विश्राम किया, यह सदा मानसी पूजन में लगे रहते थे और छबि (शोभा) में छके हुए दिन रात भगवन्नाम का वर्णन और कीर्त्तन किया करते करते थे।

एक बार जब इन्होंने दूध भात का मानसी

भोग भगवत् को लगाया, तो ध्यान में आप भी महा-प्रसाद पाया, बहुत भोजन करने से अजीर्ण होगया और यह बीमार हो गये। वैद्यने नाड़ी देख कर कहा कि दूध भात खाने से यह रोग उत्पन्न हुआ है, अजीर्ण दूर करने को पाचक औषध लेनी चाहिये। यह कह कर उसने औषध लिखी। गोसाईं जी ने कहा कि जिस भोजन से अजीर्ण हुआ है, वह ही भोजन अज्ञानरोग की निवृत्ति के लिये सिद्ध औषध है और सदा जीने के हेतु अमृत है, इसलिये आप अपनी औषध अपने पास रखिये और मुझको जिस दशा में मैं हूं, उसी दशा में छोड़ दीजिये वैद्य को विश्वास हुआ, वह चरणों में पड़े। वाह वाह! इस चिन्तन और ध्यान की सिद्धता, ऐसी सिद्धता सब को प्राप्त हो।

कुं०—ऐसा चिन्तन कीजिये, विसर सभी कुछ जाय।
आपा अपना भूल कर, ध्येय मात्र रह जाय॥
ध्येय मात्र रह जाय, ध्यान ध्याता मिट जावे।
उठे द्वैत की भूल, आप में आप समावे॥
अमर ध्यान करि कीट, होय है भौंरा जैसा।
सब कुछ जावे भूल, ध्यान कर भोला! ऐसा॥

## कथा श्रीधर स्वामी की

श्रीधर स्वामी ने श्रीमागवत का ऐसा टीका रचा कि परम अमृत भागवत का अर्थ विना परिश्रम सब की समझ में आता है। दूसरे तिलककारों के तिलक से द्वेष और खींचतान प्रकट होती है अर्थात् कर्म के उपासक ने भक्ति और ज्ञान के अर्थ को भी कर्म की ओर लगा कर टीका किया है और भक्ति और ज्ञान के उपासकों ने अपने २ मार्ग को दृढ़ किया है। किसी ने मुख्य वेद और भागवत पर दृष्टि न की और श्रीधर स्वामी ने ज्ञान, भक्ति और कर्म तीनों काण्ड वेद की पद्धति के अनुसार विना पक्षपात लिखे हैं और जैसा अर्थ जहां चाहिये गुरु परमानन्द जी महाराज से बूझ कर वैसा ही लिखा है और परमहंस संहिता को वेद की रीति के अनुसार दृढ़ किया है। जब इस टीका की रचना हो चुकी, तब काशीपुरी में पंडितों की सभा हुई, दूसरे पंडितों ने भी अपना किया हुआ टीका रक्खा और सब पंडित अपनी रचना को दूसरों की रचना से श्रेष्ठ बताने लगे, श्रीधर स्वामी को अपने टीका पर किञ्चित् भी आग्रह न था। नितान्त सब पंडितों के सम्मत से यह बात ठहरी कि बिन्दुमाधव महाराज जिस टीका को अंगीकार करें, वह ही मान्य समझा जाय और उसी की प्रवृत्ति की जाय, सब के टीके भगवत् के मन्दिर में रखवा दिये गये और दरवाजा बन्द कर दिया गया। कुछ देर पीछे जब मन्दिर खोला गया, तो स्वामी श्रीधर के तिलक पर स्वीकृति के हस्ताक्षर मिले, अन्य सब अस्वीकृत हुए। सब को विश्वास हुआ, यह ही टीका अंगीकार हुआ और चालू किया गया।

श्रीधर स्वामी पहले से भगवत् के परम भक्त थे, जिस कारण से इन्होंने घरबार छोड़ा, उसका यह वृत्तान्त है कि यह धनवान् थे, आगरे से कुछ द्रव्य सहित कहीं को जारहे थे, राह में ठग मिल गये और पूछने लगे कि तेरे साथ कौन है। उत्तर मिला कि रघुनन्दन स्वामी मेरे मालिक और जीवन आधार मेरे साथ हैं। ठगों ने आपस में सलाह की कि यह आदमी अकेला है, इसको मार कर धन असबाब लूटलें। ऐसा विचार कर जब ठगों का सरदार इनके ऊपर हथियार चलाने को उद्यत हुआ, त्योंही श्रीरघुनन्दन स्वामी को धनुषबाण लिये रक्षाके हेतु साथ देखा। इसी प्रकार कई बार इनके मारने का विचार किया परन्तु हर समय रक्षक को साथ देखा। जब श्रीधर स्वामी घर आये। तो ठगों

ने पूछा कि महाराज! वह श्यामसुन्दर सुकुमार, नवयौवन कौन है, जो मार्ग में तुम्हारी रक्षा करता रहा स्वामी जी ने उसी समय यह विचार कर कि मेरे स्वामी को क्लेश हुआ, घर बार, धन और सम्पत्ति सब को त्याग दिया। वे ठग भी विश्वास कर के भगवत्संमुख होगये।

कः-त्यागी श्रीधर भक्तवर, राम भजन अनुरक्त।
धन जन सब को छोड़ कर, रामचरण में रक्त॥
रामचरण में रक्त, दिवस निशि ध्यान लगाये।
हुए आप निर्मुक्त, भक्ति का पाठ पढ़ाये॥
भोला! भगवद्भक्त, जानिये नर बड़भागी।
एक राम की आश, आश सब की ही त्यागी॥

## कथा कामध्वज जी की।

कामध्वज जी जाति के राजपूत चार भाइयो में एक आप ही परम भक्त और वैराग्यवान् थे। वन में रह कर सदा श्रीरघुनन्दन स्वामी के भजन और सेवा में लीन रहतेथे, किसी से कुछ प्रयोजन नहीं रखते थे। एक समय भगवत्प्रसाद के निमित्त नगर में आया करते थे और उसी समय फिर लौट जाते थे। उनके भाइयों ने कहा कि यदि तुम हमारे साथ चल कर राजाजी की सरकार में हाजिरी दे आओ, तो तुम्हारा दरमाहा हम ले आया करें। कामध्वज जी ने उत्तर दिया कि जिस सरकार में नौकर हूं, वहां हाजिर रहता हूं, यह नहीं हो सक्ता कि वहाँ से गैर हाजिर होकर विमुखों के यहां जाकर चेहरा दिखाऊँ, भाइयों ने कहा कि जब तुम मरोगे, तो तुम्हारा दाह कर्म कौन करेगा? उत्तर दिया कि वह ही सब करेगा, जिसका मैं दास हूं, यह कह कर वन को चले गये। कुछ दिन पीछे जब अन्त समय आया, तो श्रीरघुनन्दन स्वामी की आज्ञा से हनुमान जी ने आकर चन्दन अगर इत्यादि से उनका दाहकर्म किया। श्री रघुनन्दन स्वामी ने अपने भक्तों का प्रताप दिखलाने को एक आश्चर्य जनक चरित्र यह भी किया कि जितने भूत प्रेत उस बाग में रहते थे, वे सब कामध्वज की चिता की धुवां लगने से पवित्र होकर परमपद को चले गये। एक प्रेत उस समय कहीं चला गया था। जब वह आया और उसने अपने सजातियों को न पाया तो एक संन्यासी से सब समाचार सुन कर उसी भस्म में लोट कर सद्गति को प्राप्त हो गया। हेमंसाराम! भगवत् का वचन है कि मेरे भक्त तीनों लोकों को पवित्र करते हैं और प्रयाग गंगा आदि का वचन है कि हम सबके पाप दूर करती हैं और हमारे पाप भगवद्भक्तों की चरण कृपा से दूर हो जाते हैं, तो क्या आश्चर्य है कि भूत पिशाच इत्यादि शुद्ध होकर सद्गति को प्राप्त हुए।

कः-कामध्वज की भस्म से, हुए पिशाच पवित्र।
संशय इसमें कुछ नहीं, अद्भुत भक्त चरित्र॥
अद्भुत भक्त चरित्र, पाप ओतन के धोते।
पापी होंय पवित्र, राम के प्यारे होते॥
भोला! तज दे सर्व, भज इस भव से हरि भज।
भक्तों के लिख लेख, सीख देते कामध्वज॥

## कथा गदाधरदास जी की।

गदाधरदास जी परम भागवत और ऐसे प्रेमी थे कि बिहारीलाल जी की सेवा और छवि अभिराम के देखने और शृंगार में सदा लीन और प्रसन्न रह कर भगवद्भक्तों की रीति से तन मन से सेवा करते थे। उदार भगवच्चरित्रों के कीर्त्तन करने वाले ऐसे थे कि वर्णन नहीं हो सक्ता। भगवत् में इनका ऐसा विश्वास था कि स्वप्न में भी दूसरे देवता की ओर नहीं देखते थे। भगवद्भक्ति का बाधक समझ कर संसार को त्याग कर बुरहानपुर

के निकट एक बाग में आकर बैठ रहे। लोगों ने बस्ती में चलने की बहुत प्रार्थना की परन्तु न गये, सदा भगवत् के ध्यान में मग्न रहा करते थे। एक दिन बहुत जल बरसा, भगवत् ने अपने भक्त का क्लेश देख कर एक साहूकार से एक बहुत दृढ़ और सुन्दर मन्दिर बनवा कर, भगवत् की आज्ञा सुना कर उन्हें बल से लाकर मन्दिर में विराजमान कर दिया और एक दूसरा मकान भी साधुओं के टिकने को बनवा दिया।

गदाधरदास जी ने श्रीलाल बिहारी जी की अति सुन्दर मूर्ति विराजमान करके साधु सेवा आरंभ की। जो कुछ आता था, उसी दिन खर्च कर देते थे, कुछ रखते नहीं थे परन्तु रसोइया कुछ सामग्री इस विचार से कि प्रभात के समय भगवत् के भोग को अतिकाल न हो जाय, रख लिया करता था। एक रात साधु आये, उनकी रसोई के लिये सामग्री ढूंढी गयी। गदाधर दास जी के पूछने पर रसोइया कहने लगा कि भगवत् के सवेरे के भोग के लिये कुछ सामग्री रखली है, वह ही रक्खी हुई है। गदाधरदास जी ने आज्ञा दी कि उसी सामग्री से साधुओं की सेवा करो, भगवत् के लिये फेर आ जायगा। उसी समय भगवद्भक्तों की सेवा की गयी। प्रभात को तीसरे पहर तक कुछ न आया और भगवत् का भोग भी न लगा। चेले लोग भूख से व्याकुल होकर कहने लगे कि अत्यन्त खर्च करने से अब तक सब भूखे हैं, न जाने कब भगवत् गदाधर जी से छुड़ावेंगे। उसी समय एक साहूकार आगया, उसने दो सौ रुपये भेंट किये। गदाधरदास जी ने कहा कि यह रुपया इन असंतोषियों के शिर पर मारो, जो हाय २ कर रहे थे। साहूकार डर गया, कि कहीं यह क्रोध मेरे ऊपर तो नहीं है। गदाधरदास जी ने सब वृत्तान्त कह कर उस साहूकार की तसल्ली की। साहूकार प्रसन्न हुआ और भगवद्भक्तों का विश्वास करके भगवत् के शरण हो गया। कुछ दिन पीछे गदाधरदास जी यहाँ से मथुरा जी चले आये और शेष समय उन्होंने व्रजकिशोर के रूप और छवि में छके हुए रह कर सत्संग और भगवत् सेवा में व्यतीत किया।

छप्पय-भक्त गदाधरदास, वास जंगल में कीन्हा।
कुछ नहिं रक्खा पास, चित्त भगवत में दीन्हा॥
भगवत् पर विश्वास, आश सब की तज दीन्हीं।
ईश्वर दीन्हा द्रव्य, सेव सन्तों की कीन्ही॥
भोला! सब की आश तज, भगवत् का हो दासरे।
यथा प्राप्त में रह सुखी, काट जगत् की पाशरे॥

## कथा माधवदास जी की।

माधवदास जी की भक्ति, महिमा, प्रताप, वैराग्य, शान्ति और भाव का वर्णन किस से हो सका है। जिस प्रकार वेदव्यास जी ने अवतार धारण करके वेदों का विभाग किया, पुराण बनाये, महाभारत रचा और सूत्र इत्यादि को जगत् में प्रकट किया, फिर उनका सार और सूक्ष्म रहस्य श्रीमद्भागवत में वर्णन करके भगवद्भक्ति और भागवत धर्म का संसार में प्रचार किया, उसी प्रकार माधवदास जी ने मानो वेदव्यास जी का अवतार लेकर भगवद्भक्ति और भगवच्चरित्रों का सब शास्त्रों का सार निकाल कर जगत् में विख्यात किया और भगन्नाम और लीला का कीर्तन करके हजारों लाखों को संसार समुद्र से पार उतारा।

यह कान्य कुब्ज ब्राह्मण थे। जब इनकी स्त्री मर गयी, तो विचार किया कि यह संसार आगमापायी है, मनोरथ तो हमारा यह था कि लड़का लड़की होंगे, उनका विवाह करेंगे, और कुल को

वृद्धि करेंगे। भगवत् ने यह चरित्र दिखाया कि स्त्री भी छीन ली, निश्चय यह संसार अनित्य है और यहां कोई किसी का नहीं है, इसलिये जो घर में हैं, उनकी चिन्ता करना निपट अयोग्य है क्योंकि सब का आहार पहुंचाने वाले, और पालन करने वाले भगवत् हैं, जो कोई अपने उपाय करने का भरोसा रक्खे, वह बुद्धिहीन है। ऐसा निश्चय करके और सब विकार छोड़ कर, संसार से अलग होकर इन्होंने श्रीजगन्नाथ पुरी में पहुंच कर भगवत् के दर्शन किये, समुद्र के किनारे बैठ कर भगवत् के रूप अनूप में मन लगाया। भगवत् में मन लग जाने से भोजन न मिलने से वे विकल न हुए, तीन दिन तक कुछ न खाया, भगवत् का ध्यान करते हुए एक स्थान पर बैठे रहे भगवत् ने सोचा कि हमारे लिये नित्य हजारों मन भोग अति मधुर व्यंजनों का बने और हमारे भक्त को तीन दिन तक एक दाना भी नहीं मिला। इस विचार से भक्तवत्सलता ने भगवत् को बेचैन कर दिया, उसी घड़ी उन्होंने अपने महाप्रसाद का सोने का थाल लक्ष्मी जी के हाथ भेजा। लक्ष्मी जी माधवदास जी के पास पहुंची, उनके मुख का प्रकाश माधवदास जी को बिजली के सदृश दिखायी दिया और पायजेब की झंकार भी हुई परन्तु माधवदास जी भगवत् के ध्यान में मग्न थे, इसलिये उन्होंने आंख न खोली लक्ष्मी जी थाल रख कर चली आयीं।

माधवदास जी थाल देख कर प्रसन्न हुए आनन्द से भोग लगाने लगे। भोजन करके उन्होंने अपने भाग्य को सराहा और सोने के थाल को पत्तों की पत्तल के समान एक तरफ डाल दिया। मन्दिर के पुजारी थाल को ढूढते हुए वहां आये, माधवदास जी के बेंत मार कर थाल को लेकर लौट आये। आकर क्या देखते हैं कि बेतों की चोट भगवत् की कमर पर लगी हुई हैं। चोट को दिखा कर भगवत् ने आज्ञा दी कि महाप्रसाद का थाल हमने माधवदास जी के लिये भेजा था, तुमने जो उनको बिना अपराध दण्ड दिया, वह सब दण्ड हम को हुआ, हम बहुत नाराज हैं। सब पुजारी अत्यन्त भय से व्याकुल होकर माधवदास जी के पास गये और बड़ी मर्याद से उनके चरणों में पड़ कर बहुत विनय और प्रार्थना करके उन्होंने अपना अपराध क्षमा कराया। यह वृत्तान्त सारे संसार में विख्यात हो गया और भगवज्जन भगवत् की कृपालुता सुन कर अति आनन्द और प्रेम से शरीर में न समाये।

माधवदास जी को भगवत् के स्वरूप में ऐसा प्रेम और स्नेह था कि देखते २ बेसुधि होकर मन्दिर में रह जाते थे और जब पुजारी मन्दिर बन्द करते थे, तो भगवत् इच्छा से वे उनको दिखायी नहीं पड़ते थे। एक रात जाड़े के दिनों में माधवदास जी को जाड़ा लगा। भगवत् ने पुजारियों को आज्ञा की कि हमको ठंड लगती है। पुजारी तुरन्त भान्ति २ की रजाइयां लाये। भगवत् ने अपने ओढ़ने की रजाई और बनात माधवदास जी को कृपा करके दी और आप नयी रजाई लेली, तब उनकी ठंड मिटी।

एकबार माधवदास जी के पेट में मुर्रा का रोग हुआ। अतीसार के होने से वे समुद्र के किनारे जा पड़े। जब उनको पानी लेने और शौच करने का सामर्थ्य न रहा, तो आप भगवत् ने आकर उनके शरीर को धोया और शुद्ध किया। माधवदासजी ने विचार किया कि यह कौन है, जो ऐसी सेवा करता है। जब यह मालूम हुआ कि आप भगवत् हैं, तो हाथ जोड़ कर विनय किया कि ऐसा परिश्रम कब उचित है कि दास की दास्यता में

भेद आवे और स्वामी की बड़ाई में। भगवत् ने कहा कि जब मेरे भक्त को दुःख होता है, तब मुझ से रहा नहीं जाता, आप चला आता हूं! माधवदास जी ने विनय किया कि रोग को दूर कर देते जो ऐसा परिश्रम न करना पड़ता। भगवत् ने कहा कि रोग का दूर होना प्रारब्ध कर्म के आधीन है और प्रारब्ध का मेट देना उचित नहीं दीखता क्यों कि कर्म भोग की पद्धति से विरुद्ध है और जब कि मेरे भक्त कष्ट बिना ही प्रारब्ध कर्मों को भोग लेते हैं, तो उनके ध्वंस का प्रयोजन ही क्या है। यही रीति दिखा कर भगवत् ने उनका रोग भी दूर कर दिया, ताकि किसी साधक भक्त का विश्वास न छूट जाय। हे मंसाराम! कर्म तीन प्रकार के हैं संचित, क्रियमाण और प्रारब्ध। उनमें से संचित और क्रियमाण तो जिस घड़ी मनुष्य भगवत् शरण होता है, उसी घड़ी छूट जाते हैं और प्रारब्ध निश्चय भोग से ही निवृत्त होता है।

जब यह चरित्र माधवदास जी का विख्यात हुआ, तो उनके पास हजारों आदमियों की भीड़ रहने लगी। माधवदास जी ने अपनी सिद्धता का विश्वास और भीड़ दूर करने के लिये। भिक्षा मांगना आरंभ किया। एक के द्वार पर गये, स्त्री चौका दे रही थी, उसने शब्द सुन कर क्रोध करके पोतने का कपड़ा उनके शिर पर मारा। माधवदास जी को उस पर दया आयी, उन्होंने हंस कर कपड़ा उठा लिया, उसे पानी से धोकर शुद्ध किया, बत्ती बना कर रात को जगन्नाथ जी के मन्दिर में दीपक बार दिया। उसका यह प्रताप हुआ कि भगवत् के मन्दिर और उस स्त्री के हृदय में बराबर प्रकाश हुआ अर्थात् उस स्त्री के हृदय में तुरन्त ही भक्ति उत्पन्न हुई। दूसरे दिन जब माधवदास जी गये तो स्त्री रोई कर उनके चरणों में पड़ी, हे मंसाराम! इस उदारता की बड़ाई किस प्रकार हो सकती है? नहीं होसकती।

एक पण्डित सब देशों के पण्डितों को शास्त्रार्थ में जीतता हुआ और दिग्विजय करता हुआ पुरुषोत्तमपुरी में आया और माधवदास जी की पण्डिताई का वृतान्त सुन कर उनसे कहने लगा कि मेरे साथ शास्त्रार्थ करो। माधवदास जी ने शास्त्रार्थ न किया और कागज पर लिख कर दे दिया कि माधवदास हारा। वह पण्डित काशी में गया और अपने पांडित्य की बड़ाई करके पंडितों से कहने लगा कि मैं माधवदास जी को जीत कर आया हूं। जब वह कागज पंडितों की सभा में खोला गया, तो उसमें यह लिखा देखा कि माधवदास जीता और पंडित हारा। पण्डित अति क्रोध करके फिर जगन्नाथपुरी में आया और माधवदास जी को अनेक दुर्वचन कह कर झगड़ा बखेड़ा करने को उद्यत हुआ। माधवदास जी ने कहा कि जो कुछ तुम कहो, फिर लिख देवें। पंडित ने कहा कि तू बड़ा धूर्त है, तुझे गदहे पर चढ़ाकर और काला मुख करके नगर में चारों ओर फिराऊंगा, माधवदास जी तो चुप हो रहे और वह पण्डित स्नान करने चला गया। भगवत् एक पंडित का रूप बना कर उसके पास पहुंचे, उसको जीत कर, गदहे पर चढ़ाकर और सौ दो सौ लड़के एकत्र करके और आप भी लड़के के रूप से साथ होकर भगवत् ने उस पंडित की खूब धूल उड़ाई। संयोग वश माधवदास जी भी उधर आगये और कहने लगे कि ऐसे का मान भंग करना क्या उचित था? भगवत् ने कहा कि बहुत उचित था कि यह मूर्ख मेरे भक्तों को गदहे पर चढ़ाकर मुझको गदहे पर चढ़ाना चाहता था। माधवदास जी ने उस पंडित को आप गदहे पर से उतारा और अपना अपराध क्षमा कराया।

एकबार माधवदास जी के मन में आया कि पुरुषोत्तमपुरी में ब्रज के चरित्र बहुत हुआ करते हैं, ब्रज का दर्शन करना चाहिये। यह सोच कर चल दिये। मार्ग में एक भगवद्भक्त बाई इनको भोजन कराने को ले गयी। जब माधवदास जी ने भगवत् का भोग लगाया, तो जगन्नाथराय जी आये और माधवदास जी के बराबर बैठ कर भोजन करने लगे। भगवत् का सुकुमार अंग, सुन्दर मुख और थोड़ी अवस्था देख कर वह बाई रोने लगी। माधवदास जी ने रोने का कारण पूछा तो कहने लगी कि यह लड़का जो तुम साथ लाये हो, थोड़ी उमर का बहुत सुकुमार है, इसके माता पिता कैसे जीते रहे होंगे? माधवदास जी ने गरदन फेरी तो अपने स्वामी को देखा, भगवत् कृपा और अनुग्रह के प्रेम में वे बेसुधि हो गये और बाई को बोध कराके आगे चले।

किसी और ग्राम में एक भगवद्भक्त महाजन रहता था। उसको माधवदास जी ने वचन दिया था, कि तेरे घर आवेंगे। जब माधवदास जी उसके घर पहुंचे, तो महाजन किसी काम को बाहर चला गया था, उसकी स्त्री घर पर थी, वह माधवदास जी के चरणों में पड़ी। एक महन्त उसकी अटारी पर रसोई बनाता था स्त्री ने उस से कहा कि एक हरि-भक्त आये हैं, वे भी तुम्हारे साथ प्रसाद पावेंगे। महन्त ने क्रोध सहित उत्तर दिया कि यहां किसी दूसरे की रसोई नहीं हो सकती। स्त्री ने लाचार होकर माधवदास जी से विनय किया कि सामग्री तैयार है, आप रसोई बनालें। माधवदास जी ने कहा कि रसोई नहीं बन सकी, जो कुछ वस्तु भोजन के योग्य हो, ले आओ। स्त्री गरम दूध ले आयी और माधवदास जी भोग लगा कर चल दिये। थोड़ी दूर गये थे कि वह महाजन अपने घर आया और अपनी स्त्री से वृत्तान्त सुन कर दौड़ा, जाकर माधवदास जी के चरण पकड़ कर और हाथ जोड़ कर अपने घर पधारने की विनय करने लगा। माधवदास जी ने उसे बहुत कुछ समझा कर कहा कि तेरे घर तेरी स्त्री ऐसी बड़भागिनी है कि वर्णन नहीं हो सका, अब तेरी सद्गति और तेरे उद्धार में क्या संदेह है। यह महन्त भी माधवदास जी का नाम सुन कर महाजन के साथ आया था, हाथ जोड़ कर अपराध क्षमा कराने लगा और शिक्षा देने की प्रार्थना करने लगा माधवदास जी ने कहा कि हरिद्वार में जाकर भगवद्भक्तों की शक्ति प्रसादी का सेवन करो, तब तुम्हारा ठिकाना लगेगा।

महाजन और महन्त को विदा करके वहाँ से माधवदास जी वृन्दावन में आये, श्रीवृन्दावन और श्रीवृन्दावचन्द्र के दर्शन करके परमानन्द में मग्न हो गये। एक दिन बांके बिहारी जी के मन्दिर में दर्शन करने गये, वहां चने मिले और द्वारपालों ने कहा भी कि भगवत् रसोई का भोग लगने वाला है, तब प्रसाद मिलेगा परन्तु माधवदास जी ने चनों से ही क्षुधा की शान्ति समझ कर यमुना किनारे पर आकर भगवत् अर्पण करके चनों का भोग लगाया। जब मन्दिर में रसोई तैयार हुई और पुजारी भान्ति २ के मधुर व्यंजन भगवद्भोग के लिये ले गये, तो भगवत् ने कुछ अंगीकार न किया और कहा कि माधवदास जी ने हम को चनों का भोग लगाया था, इसलिये अब हमको कुछ चाह नहीं रही है। मन्दिर के रोसोइये और पुजारी दौड़े गये और और माधवदास जी को ढूंढ करले आये। जब वे आये तब भगवत् ने भोग लगाया।

श्रीवृन्दावन के दर्शन करने के पीछे माधवदास जी दूसरी व्रजभूमि के दर्शन करने को गये। भांडारीवन में खेम नाम का एक साधु रहता था,

उसके स्थान पर उन्होंने टिकने का विचार किया परन्तु उसने इनको टिकने न दिया और बहुत कठोर वचन कहने लगा। माधवदास जी कहीं अलग जाकर ठहर गये। उस साधु ने अपने लिये तरमाई तैयार की और जब वह खाने को बैठा तो सब कृमि होगये लाचार होकर आया और माधवदास जी के चरणों में पड़ा। माधवदास जी ने उसका अपराध क्षमा किया और उसे भगवद्भजन की दीक्षा दी।

पश्चात माधवदास जी हरियाने गांव में आये। वहाँ वैरागियों के एक स्थान में साधु सेवा हुआ करती थी, बहुतसी गौ रहती थीं और भगवत् की कथा हुआ करती थी। माधवदास जी भगवच्चरित्रों के सुनने के लिये कुछ दिन के लिये ठहर गये और गौओं की टहल करने लगे, गोबर इकट्ठा कर उपले पाथ देते थे। एक साधु वहां आया, उसने माधवदास जी को पहिचान कर उनको दण्डवत् किया। जब वहाँ के महन्त आदिकों ने माधवदास जी को पहिचाना, तो वे सब उनके चरणों में पड़े और बहुत विनय करने लगे। माधवदास जी कुछ दिन वहां रहे और चलती बार ऐसा वर दे आये कि वह स्थल अब तक पूर्ववत् बना हुआ है और वहां साधु सेवा होती है।

फिरती बार माधवदास जी अपने घर भी गये और माता और लड़कों को भगवद्भक्ति का उपदेश देकर चले आये, जब उस महाजन के ग्राम के समीप पहुंचे तब स्वप्न में उसे अपने आने की सूचना देदी। उसने आकर दर्शन किये। वहां से माधवदास जी पुरुषोत्तम पुरी को चले और भगवत् के दरबार में पहुंचकर ध्यान भजन में लगे। हे मंसाराम! माधवदास जी के चरित्र बहुत हैं, जितने मेरे जानने में आये उतने वर्णन कर दिये।

छप्पय—माधवदास चरित्र, परम पावन अघहर्ता।
शोक मोह भय हारी, शान्तिदायक सुखकर्ता॥
पढ़े सुनें नर नारि, भक्ति भगवत् को पावें।
हो हरि में विश्वास, आश की पाश नशावें॥
भोला! जग की आश तज, कर भगवत् में प्रेम रे।
देह गेह से मोह मुक्त, यदि चाहत है क्षेम रे॥

---

## मोहन

( रचयिता रामसेवक सिंह श्याम )

जलद प्रलय साज सज्यो व्रजमण्डल पै;
आये यह राने तब कहो तूं बचाये कौन?
मंद बुद्धि अन्ध कुन्ति कुंवर पढ़ायो छद्म;
दहन करत लाक्षा गृह कष्ट टारयो कौन?
दुष्ट ये सताते हा अनाथ तेरी आश्रिताको;
गहत पंचाली पट, पट वपु धारयो कौन?
"मोहन" तुम्हारे हाथ लाल हैं पुकार रहे;
क्लेश के सताये आओ कहां हा छिपे हो मौन?

---

# ईश्वर की स्तुति करो

( ले० श्री० स्वामी आत्मानंद जी )

एक भक्त ने अपने गुरु से कहा कि महाराज जी! आपकी कृपा से अब सुधरा हूं। यद्यपि जैसा चाहिये वैसा अच्छा नहीं हुआ है तो भी आपके सत्संग के प्रभाव से बड़े बड़े पापों से बच सकता हूं। अब मैं चोरी करता नहीं, झूठ बोलता नहीं, व्यभिचार की इच्छा रखता नहीं, हिंसा करता नहीं, किसी प्रकार का छल प्रपंच करता नहीं, किसी किसी

समय कुछ अभिमान आजाता है, उसे भी अकुंश में रखने का प्रयत्न करता है, किसी को निष्कारण दुःख देता नहीं, किसी की भी किसी समय हंसी उड़ाता नहीं, किसी पर निरर्थक क्रोध करता नहीं, किसी के साथ अब शत्रुता करता नहीं और हो सकता है तो थोड़ा बहुत द्रव्य दे दिया करता है, इससे थोड़ा आनंद मिलता है, व्याधि कम रहती है, लोग मान देते हैं, धर्म के विषयों में और भी दिलचस्पी लेने को मन चलता है और मन जरा शान्त भी रहता है, तदपि जैसा चाहिये, वैसा आत्मिक आनन्द अभी भी मुझे मिलता नहीं। इससे प्रभु के मार्ग में आगे बढ़ने के लिये और क्या करना चाहिये, उसे बताइये।

गुरुः—हे सौम्य, इस प्रकार की नीतिका पालन करना तथा भलाई करना तो मनुष्य मात्र का सामान्य धर्म है, किन्तु आज कल के मोह भरे हुए राग रंग के कटा कटी के समय में इतना भी पालन करना और स्वार्थी बने हुए लोगों के साथ ऐसी भलाई करना, कुछ कम नहीं है। यह बड़ी ही खूबी की बात है, ईश्वर के कृपा पात्र भाग्य शाली मनुष्यों से ही यह हो सकता है, किन्तु याद रक्खो कि यह तो केवल प्रारम्भिक सार्वजनिक नीतिके नियम है। इससे कुछ भक्तों की तृप्ति नहीं हो सकती, प्रभु के मार्ग में चलने की इच्छा करने वाले स्वर्ग सुख भोगने वाले और मोक्ष के अधिकारी भक्तों से ऐसी सामान्य नीति में रहा नहीं जा सकता। प्रभु के कृपा पात्र भक्तों को विशेष धर्म का पालन करना पड़ता है। जिस प्रकार दुनियां के मनुष्यों के लिये "भला बनो तथा भला करो" सामान्य धर्म है, उसी प्रकार "पहरा दो और स्तुति करो" यह संसार भर के भक्तों का विशेष धर्म है। पहरा देने का प्रयोजन यह है कि हृदय में किसी भी प्रकार की पाप वासना घुसने न पावें इसका ध्यान रक्खो। ध्यान रखो कि किसी प्रकार के तुच्छ विषय मन में घुसने न पायें और हृदय में किसी भी प्रकार के विकार उत्पन्न न होने पायें, इसका नाम पहरा देना है। तुम यद्यपि बाहर की व्यवहारिक नीति का पालन करते हो, तौ भी मालूम पड़ता है कि इस नीति का पालन करने में तुम्हें परिश्रम पड़ता है। मन में लगता है कि ऐसी भलाई करके तुम कुछ विशेषता कर रहे हो, ऐसे विषयों का पालन करते समय तुम्हारा मन कभी तुच्छ विषयों में पड़जाता होगा। तदपि इस नीति के अनुसार तुम अपने मनको पीछे खींचते होगे, जिससे इन विचारों के अनुसार चलते होगे तो भी प्रसंग पड़ने पर मन में निर्बल विचार आही जाते होंगे। इससे प्रसंग पड़ने पर बाहर से घुसने वाले तथा हृदय में उत्पन्न होने वाले विचारों को रोकने का नाम ही पहरा देना है।

तुम अब चोरी नहीं करते किन्तु जब स्वार्थ की या लोभ की बात आती है तो उसी में मन को रमाये रहते हो। तुम अब व्यभिचार नहीं करते किन्तु जब शृंगार रस की बातें आती है तब उसमें तुम्हें आनन्द मिलता है। तुम अब बिना कारण झूठ नहीं बोलते, किन्तु जब हंसी या परिश्रम का प्रसंग आता है तब मन जरा ढीला पड़ जाता है कि नहीं? किसी को नुकसान न पहुंचाने वाला साधारण झूठ बोलने की युक्ति सोचते हो कि नहीं? तुम किसी के साथ हंसी न करते होगे किन्तु जब कभी हंसने योग्य मनुष्यों की बात चलती है तब तुम्हारे मुख पर मुसकराहट आ जाती है कि नहीं? तुम किसी से ईर्षा न करते होगे किन्तु जब किसी मनुष्य के जिसके सम्बन्ध में तुम्हारे विचार अच्छे नहीं है, विरुद्ध में कोई बात होती है तो बीच में सहारा

देते हो कि नहीं ? तुम्हारे मार्ग में अड़चन न पड़ने पर जब तक तुम्हारी गाड़ी सीधी चलती जायगी तब तक तुम क्रोध भी नहीं करोगे, किन्तु कभी किसी प्रकार अड़चन पड़ने पर क्या अपने मन को वश में रख सके हो ? नहीं। अवश्यता साध्य किसी के साथ लड़ाई झगड़ा न करते होगे किन्तु पहिले जिनके साथ शत्रुता होगई है तथा बाप दादा के समय से जिसके साथ वैर चला आता है, उन्हें क्या तुमने क्षमा कर दिया है ? नहीं। इस प्रकार प्रत्येक विषयों में मन की समता रख सकने का नाम "पहरा देना" है और यह भक्तों का परम धर्म है।

इसके पश्चात् सब से उत्तम और सब से मुख्य धर्म ईश्वर की स्तुति करना है क्योंकि स्तुति से हृदय की शुद्धि होती है, पवित्रता आती है, हृदय में नया बल आता है, पाप वासना का नाश होता है, स्वाभाविक ज्ञान का उदय होता है और स्तुति से मनुष्य ईश्वर के पास जा सकता है इससे स्तुति करना भक्तों का मुख्य धर्म है। स्तुति में नवीनता, धीरता, मन की शांति, आकर्षण और एकाग्रता है। स्तुति में एक प्रकार की समाधि, मानसिक आनन्द, हृदय को दिलासा, आत्मिकबल है और स्तुति में महा शक्ति के साथ ही साथ तार लगा रहता है इससे शिव ब्रह्मादिक भी परम कृपालु परमात्मा की स्तुति किया करते हैं, तब सर्व शक्ति मान् शांतिदाता आनन्द स्वरूप मोक्ष दाता महान् ईश्वर की यदि भक्तगण स्तुति किया करते हैं तो इसमें नवीनता ही क्या है ?

भक्तः—हे भगवन् स्तुति का स्वरूप क्या है ? संसार में अनेक प्रकार से स्तुति करते हुए दृष्टि आते हैं मेरे कल्याणार्थ जो निश्चय करके ठीक हो वही कहिये।

गुरुः—हे श्रेयोत्सुक प्रियवत्स, तैंने अति उत्तम प्रश्न किया है उसका उत्तर यह है कि मूर्ति पूजन, स्वाध्याय, जप, तप, शास्त्रों का वचन युक्ति पूर्वक कथन करना, या युक्ति प्रयुक्ति पूर्वक सुनना, फिर मनन करना, ईश्वर के नामों का कीर्तन करना, ईश्वर प्रणीधान, ईश्वर स्मरण, महात्माओं का सत्संग, पवित्रता, जगत के जीवों की सेवा करना, धारणा, ध्यान, समाधि, सांख्य योग, कर्म योग इत्यादि सब ही स्तुति हैं।

हे प्रिय दर्शन, इस प्रकार अपने हृदय पर "पहरा देना" और "स्तुति करना" भक्तों का मुख्य धर्म है और यह दुनियां के सब धर्मों का सत्य तत्व है, इन स्तुतियों में से जो तुमको अभिमत हो उसका अनुष्ठान कर सुख स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति कर। कहा भी है।

दो०:—सब घट मेरा साइयां, खाली घट नहिं कोय।
बलिहारी वा घट की, जा घट परगट होय॥

प्रिय पाठको मेरे प्राण प्यारे भक्तो अपने पवित्र अन्तः करण पर "पहरा दो" और ईश्वर की "स्तुति करो" ! महान ईश्वर की स्तुति करो !! स्तुति करो !!!

---

# महात्माओं के वाक्य

१ स्वार्थ रहित होने का प्रयत्न करो और अपने गुरु की सेवा करो। सेवा में अपने आराम और सुविधा को भूल जाओ। जब सच्चे प्रेम का उदय होता है तो हम प्रेमी से कुछ पाने की इच्छा नहीं रखते बल्कि हम सब कुछ उस पर न्योछावर करने को तय्यार रहते हैं और ऐसा करने में आनन्द

मनाते हैं। प्रेम ही के लिए होना चाहिए। यह परतंत्रता नहीं है वरन् आनन्द पूर्वक स्वतंत्रता है।

२. गुरु का अहसान हम पर अनन्त है। हम न तो स्वयं उनकी यथार्थ सेवा ही कर सकते हैं और न उनके उद्देश में सहायता ही दे सकते हैं। अपने जीवन से उनको प्रसन्न करना हमारा सब से बड़ा कर्तव्य है। अपने किसी विचार, शब्द या कर्म्म से उनको अप्रसन्न करना हमारी सब से भारी बद क़िसमती है॥

३. अपने आपको पूर्ण रूप से गुरु के समर्पण कर दो फिर तुम अभय हो जाओगे। उनकी दया सदैव तुम्हारे साथ रहेगी और प्रत्येक भय और कम ज़ोरी में वह तुम्हारी रक्षा करेगी।

४. सच्चे प्रेम से बढ़ कर संसार में कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है। प्रेम से सब कुछ साध्य है और असाध्य कुछ भी नहीं है। प्रेम जीवन है। और प्रेम का अभाव ही मृत्यु है। भक्ति की शक्ति आश्चर्य मय है। अपनी दृष्टि सदैव उद्देश पर लगाए रहो, ऐसा करने से तुम जीवन यात्रा प्रसन्नता और निर्विघ्नता से व्यतीत कर सकोगे। उद्देश रहित जीवन में सुख और शान्ति नहीं हो सकती।

५. बुद्धि का वास मनुष्य के दिमाग में है न कि उपाधियों और पुस्तकों में।

६. नम्रता और विनय ही वह सीढ़ियां हैं जिनके द्वारा मनुष्य धीरे २ ऊपर को चढ़ सकता है। मनुष्य को गिराने वाला अहंकार है न कि विनय।

७. बुराई के बदले बुराई करना बड़ा आसान है। यदि तुम में मनुष्यता है तो उस आदमी के साथ भलाई करो जिसने तुम्हारे साथ बुराई की है कि परमात्मा दयालु पुरुषों से प्यार करते हैं।

८. यद्यपि भेद कुछ भी नहीं है तब भी मैं तेरा हूं क्योंकि लहरें समुद्र से निकली हैं समुद्र लहरों से नहीं।

९. अमूल्य जीवन इन तुच्छ बातों में नष्ट कर दिया "मैं गरमी में क्या खाऊंगा और सर्दी में क्या पहनूंगा" अरे नीच पेट तू एक मधुकरी में क्या नहीं सन्तोष कर लेता ताकि तुझे गुलामी में अपनी गर्दन न झुकानी पड़े॥

१०. जब तक तेरे पास रुपया और ज़मीन है तब तक उनको अच्छे कामों में लगादे अन्यथा वह कभी दूसरों के पास चले जावेंगे।

११. दुःख वह पग डण्डी है जो हमको परमात्मा का अनुभव कराने में जल्दी से आगे लेजाती है। यह वह अन्धेरी गुफा है जिसमें से उन लोगों को अवश्य गुज़रना होगा जो अनन्त सुख, और सनातन ब्रह्म को प्राप्त करना चाहते हैं॥

१२. जो आदमी दूसरों को अच्छा बनाने का बहुत प्रयत्न करता है वह उनको बुरा बनाता है। मनुष्यों के सुधार का केवल एक ही ढंग है कि मनुष्य स्वयं अच्छा बन जाय और अपनी आंख के शहतीर और दूसरों की आंख के तिनके वाली कहावत को सदा याद रक्खे। दूसरों को उपदेश देने का समय तो कभी २ आता है और स्वयं अच्छा बनने का समय सदैव रहता है।

१३. बिना नतीजे के विचारे किसी काम का आरम्भ न करो।

१४. सहानुभूति का एक शब्द भी मनुष्य बहुत दिन तक याद रखता है।

१५. जिनका जीवन पवित्र है और जिनके विचार शुद्ध वे सदैव प्रसन्न रहते हैं। अध्यात्मिक जीवन की उन्नति की कसौटी प्रसन्नता है। जिस मनुष्य की आत्मा का विकाश हो चुका है वह सदैव आनन्दित रहता है। यदि हमारा आनन्द बढ़ रहा है तो हमको समझना चाहिए कि हमारी अध्यात्मिक

उन्नति हो रही है।

१६. पवित्रता, धैर्य्य और ध्यान का निरन्तर अभ्यास करना चाहिए, लगातार अभ्यास स्वभाव बन जाता है।

१७. परमात्मा में अत्यन्त प्रेम का नाम भक्ति है। भक्ति के प्राप्त करने पर मनुष्य पूर्ण, अमर और सन्तुष्ट होजाता है, भक्ति की प्राप्ति के पश्चात् अन्य किसी प्रकार की इच्छा शेष नहीं रहती।

१८. भय अहंकार और ईर्षा द्वेष से रहित हो जाता है, भक्ति की प्राप्ति पर आत्मा ज्ञान से पूर्ण हो जाता है, वह शान्त स्वरूप बन जाता है और सिवाय परमात्मा के उसे और कुछ भी अच्छा नहीं लगता। जब जीव अपनी सब प्रकार की वासना, विचार और कर्मों का त्याग कर देता है और परमात्मा के एक क्षण भर के विस्मरण से भी उसे अत्यन्त कष्ट होता है तब उसमें भक्ति का उदय होना समझना चाहिए।

१९. एक अच्छी माता सैकड़ों अध्यापकों से अधिक प्रभाववाली होती है।

२०. स्त्रियें पुष्पों की भान्ति हैं। उनका स्वभाव कोमल होता है उनके साथ नरमी और सभ्यता से व्यवहार करना चाहिए॥

२१. यदि परमात्मा का साक्षात्कार करने में तुम अब तक असफल रहे हो तो अधिक अभ्यास करो। हिम्मत मत हारो। सन्तोष पूर्वक अभ्यास को आरम्भ रक्खो ठीक समय आने पर तुमको अवश्यमेव परमात्मा के दर्शन होंगे।

२२. मन की साधना संसार के समस्त ज्ञान से बढ़कर है।

२३. शराब से मनुष्य पशु ही नहीं बन जाता किन्तु पागल बन जाता है। यदि तुम शराब से प्रेम करोगे तो तुम्हारी स्त्री, तुम्हारे बालक और तुम्हारे मित्र तुम से घृणा करेंगे।

२४. चित्त की प्रसन्नता लाखों रुपये की आमदनी से बढ़कर है।

२५. परमात्मा न तो तेरी जाति को पूछेगा और न ही तेरे कुलको वह तो केवल यह पूछेगा कि तू ने पृथ्वी पर क्या २ काम किए हैं॥

---

## किसको

( ले० श्री पं० बाबूलाल जी भार्गव )

किसकी रवि शशि औ तारागण खोजा करते हैं दिन रात!
किसका यश गया करते हैं द्विज-गण होते ही सुप्रभात?
किसको सुखद बनाने जाता सुमन-गंध के प्रात-बयार!
किसको जलधि उचककर लहरों से जतलाता है निजप्यार?
किसकी मंजुल मूर्ति देखने को नित तरसा करते नैन!
उस प्रियतम परमेश्वर की जो व्याप रहा है जग में ऐन?

## तेजो विन्दु उपनिषद्

निदाघ्य नाम के मुनि ने ऋभु से पूछा हे भगवन्! आत्म अनात्म का विवेक कहिए।

वे ऋभु बोले:-ब्रह्म सब वाणियों की अवधि है, गुरु सब चिन्ताओं की अवधि है। आत्मा सब का कारण और कार्य है, परन्तु स्वयं कार्य और कारण से रहित है। वह सब संकल्प से रहित, सर्व नाद मय शिव है। सब से रहित चिन्मात्र है सर्व आनन्द मय है। पर है। सर्व तेज रूप प्रकाश रूप है। नाद आनन्द मय आत्मा है। सब अनुभवों से मुक्त, सब ध्यान से रहित है। सब नाद कलाओं से अतीत, अव्यय और आत्म अनात्म विवेक आदि भेद अभेद से रहित ऐसा वह आत्मा मैं हूं। शान्त अशान्त से

रहित जो नाद का आन्तर्ज्योति रूप है। जो महा-वाक्य के अर्थ से दूर है, "ब्रह्मास्मि" से अति दूर है। तत् शब्द से रहित, त्वं शब्द से रहित तथा वाक्य के अर्थ से रहित है, जो क्षर अक्षर से रहित है, वह ही नाद का आन्तर्ज्योति है। अखण्ड एक रस अथवा मैं आनन्द हूं' इससे रहित, सब से अतीत स्वभाव वाला, वही नाद का आन्तर्ज्योति है।

आत्म शब्द से रहित तथा जो आत्म के शब्दार्थ से रहित है तथा जो सच्चिदानन्द से रहित है ऐसा ही यह सनातन आत्मा है। इसका कथन करना अशक्य है, जो वेद वाक्यों से अगम्य है, जिससे बाहर कुछ नहीं है, भीतर कुछ नहीं है और न कुछ है। जिसका कार्य और कारण ब्रह्म ही है ऐसा आत्मा ही है इसमें संशय नहीं है। जिसका शरीर नहीं अथवा जीव नहीं है तथा भूत भौतिक नहीं है, जिसका नाम रूप, भोज्य, भोग अथवा भोक्ता नहीं है, जो सत्, असत् नहीं है अथवा जिसकी स्थिति भी नहीं है, जो क्षर अक्षर नहीं है। गुणी अथवा गुण रहित भी नहीं है वह सम आत्मा है इसमें संशय नहीं है, जिसका वाच्य वाचक अथवा श्रवण मनन नहीं है। अथवा जिसमें गुरु शिष्यादि भेद देव, लोक, सुर, असुर अथवा धर्म, अधर्म और शुद्ध अशुद्ध व जरा भी नहीं है। जिसमें काल, अकाल, निश्चय या संशय नहीं है। जिसमें मंत्र अमंत्र अथवा विद्या अविद्या नहीं है। जिसमें द्रष्टा दर्शन, दृश्य नाम मात्र भी हो तो अनात्म का प्रसंग आता है। अनात्म जगत् भी जहां नहीं है इस प्रकार निश्चय कर। वह सर्व संकल्प शून्य होने से, सर्व कार्य रहित होने से। केवल ब्रह्म मात्र होने से, तीनों काल रहित होने से जीव के तीनों गुणों के अभाव से, तीनों ताप से रहित होने से, तीनों लोक रहित होने से सब आत्मा है इस प्रकार के उपदेश से निश्चय कर। उसके चित्त के अभाव से चिन्तन करने योग्य और देह के अभाव से बुढापा नहीं है, पैरों के अभाव से उसकी गति नहीं है, हाथ के अभाव से क्रिया नहीं है। जीव के अभाव से मृत्यु नहीं है, बुद्धि के अभाव से सुखादिक नहीं हैं। धर्म नहीं है, पवित्र नहीं है, सत्य नहीं है और भय नहीं है। उसके लिए अक्षरों का उच्चारण नहीं है और गुरु शिष्यादि भी नहीं है, एक के अभाव में दूसरा नहीं है और दूसरे के अभाव में एकता नहीं है।

सत्यता है तो किंचित् असत्य सम्भव नहीं है और यदि सत्यता होवे तो सत्यता न घटेगी। यदि शुभ है तो अशुभ जान क्योंकि अशुभ से शुभ कहा जाता है, यदि भय है तो अभय जान। बंध है तो मोक्ष है, बन्ध के अभाव में भक्ति कहां? यदि मरण है तो जन्म हो, जन्म के अभाव में मरण नहीं है। यदि तू हो तो मैं हो, तू नहीं तो मैं भी नहीं। यह है तो वह है, वह के अभाव में यह नहीं है। है तो नहीं है, नहीं है तो है भी किंचित् नहीं है। द्वैत है तो अद्वैत है, द्वैत के अभाव में दोनों नहीं हैं। यदि भीतर है तो बाहर है, भीतर के अभाव में बाहर नहीं है। पूर्णता है तो कुछ अपूर्णता उत्पन्न करती है। इसलिए यह तू, यह मैं, ये ऐसा कहीं नहीं है। सत्य में दृष्टान्त नहीं है, अज में दृष्टान्त नहीं है। पर ब्रह्म मैं हूं इस प्रकार स्मरण करने वाला मन नहीं है, यह जगत ब्रह्म मात्र है, मैं और तू भी ब्रह्म मात्र है।

मैं केवल चिन्मात्र हूं, अनात्मा नहीं हूं इस प्रकार निश्चय कर। यह प्रपंच है ही नहीं, न कहीं उत्पन्न हुआ है न कहीं स्थित है। चित्त को प्रपंच कहते हैं, वह सर्वदा नहीं है। न प्रपंच है, न चित्तादि न अहंकार न जीव। माया के कार्य आदिक नहीं हैं और भय नहीं है। श्रवण मनन नहीं है, कर्ता नहीं

है क्रिया नहीं है। दो प्रकार की समाधि नहीं है, अविवेक भी कभी नहीं है। चार अनुबन्ध और तीन सम्बन्ध भी नहीं हैं। न गंगा न गया न सेतु न भूत। न भूमि न जल न अग्नि न वायु न आकाश न देवता न दिक्पाल न वेद न गुरु। जाति नहीं है गति नहीं है वर्ण नहीं है। वाणी से कहा हुआ या मन से माना हुआ कुछ भी नहीं है। बुद्धि से निश्चय किया हुआ वह नहीं है, चित्त से जाना हुआ नहीं है, योगी का योगादि नहीं है। वह दिन रात्रि आदिक नहीं है, भ्रान्ति नहीं है अनात्मा नहीं है ऐसा निश्चय कर।

---

# जीवन्मुक्ति के प्रयोजन

[ ले० श्री महात्मा राम ]

## गतांक से आगे।

तप-जीवन्मुक्ति का दूसरा प्रयोजन है। मनकी एकाग्रता को तप कहते हैं।

"मनश्चेन्द्रियाणां च ह्येकाग्र्यं परमं तपः।
स ज्यायः सर्व धर्मेभ्यः सधर्म पद उच्यते"

मन तथा इन्द्रियों का जो एकाग्र पना है यह ही परम तप है। और योगी जनो ने मन की एकाग्रता को सर्व धर्मों से श्रेष्ठ धर्म बतलाया है यद्यपि जीवन्मुक्त पुरुष को तप करने की कोई आवश्यक्ता नहीं है तथापि जीवन्मुक्त पुरुष का तप लोक संग्रह के लिये होता है आप सदाचार में प्रवृत्त होकर अन्य लोकों को भी सदाचार में प्रवृत्त कराना लोक संग्रह कहा जाता है। यह वार्ता श्रीकृष्ण भगवान ने भी अर्जुन के प्रति श्रीगीता में कही है:-

'लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि।'

हे अर्जुन? लोक संग्रह के लिये तू सब कुछ जानता हुआ भी कर्म करने के ही योग्य है।

जीवन्मुक्त पुरुष के तप का फल शिष्य तथा भक्त और तटस्थ इन तीन प्रकार के पुरुषों को होता है। शास्त्र प्रति पादित सन्मार्ग में वर्तने वाला गुरु भक्त श्रद्धा भक्ति संयुक्त गुरु की आज्ञा में रहने वाला जो शिष्य है वह तो गुरु के प्रसाद से गुरु पदिष्ट अर्थ में निश्चय वाला होने से मुक्ति रूप फल को प्राप्त होता है। यहां पर यह श्रुति भी प्रमाण है।

'आचार्यवान्पुरुषो वेद तस्य तावदेव।
चिरं यावन्नविमोक्षेऽथ संपत्स्ये॥'

ब्रह्म वेत्ता आचार्य की शरण को प्राप्त हुआ शिष्य आचार्य के उपदेश से ही ब्रह्म को साक्षात्कार करता है और उस ज्ञानवान् पुरुष को तबतक ही विदेह मोक्ष में विलम्ब है जब तक उसके प्रारब्ध कर्म को भोग करिके निवृत्ति नहीं भई। उस प्रारब्ध कर्म के समाप्त होने पर विदेह मोक्ष को ही प्राप्त होता है। दूसरा भक्त पुरुष भी उस ज्ञानवान् महात्मा के पूजन अर्चनादि करके तथा अन्न पानादि वस्तुयें देकर मन वाँछित पदार्थों को प्राप्त होता है यह बात श्रुति में भी कही है।

'यं यंलोकं मनसा संविभाति विशुद्ध।
सत्वः कामयते यांश्च कामान्॥
तं तं लोकं जयते तांश्च कामान्।
तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद्भूति कामः॥'

श्रद्धा भक्ति वाला पुरुष शुद्ध अन्तः करण से ज्ञानवान् पुरुष के पूजनादिकों को करता हुआ। जिस २ लोक की प्राप्ति की इच्छा करता है तथा जिन २ पदार्थों की प्राप्ति की इच्छा करता है तिस२ लोक को तथा तिन २ पदार्थों को प्राप्त होता है। इसलिये ऐश्वर्य संपदा की इच्छा वाला पुरुष श्रद्धा

भक्ति सहित ब्रह्म वेत्ता पुरुष का ही पूजन अर्चनादिक करे। इसी लिये स्मृतियों में कहा है कि जिस के गृह पर एक ब्रह्म वेत्ता पुरुष ने भोजन किया है उसके मानो सर्व जगत् ने भोजन कर लिया, भावार्थ यह है कि सर्व जगत को भोजन कराने का जितना पुण्य होता है उतना पुण्य एक ब्रह्मवेत्ता के जिमाने से होता है।

'ज्ञानिभ्यो दीयते यच्च तत्कोटि गुणितं भवेत्।'

ज्ञानवान् पुरुष के प्रति दी हुई वस्तु हजार गुणी हो जाति है। तीसरे तटस्थ पुरुष दो प्रकार के होते हैं एक सन्मार्गवर्ति दूसरा असन्मार्गवर्ति। सन्मार्गवर्ति पुरुष तो उस ज्ञानवान् पुरुष की सदाचार में प्रवृति देख कर वह भी सदाचारी होजाता है। यही वार्ता श्रीकृष्ण भगवान् ने गीता में कही है।

'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।'

जिस २ आचरण को श्रेष्ठ पुरुष करते हैं उसी २ आचरण को अन्य पुरुष भी करते हैं। दूसरा असन्मार्गवर्ति पुरुष उस ज्ञानवान् जीवन्मुक्त पुरुष के दृष्टि पात से ही सर्व पापों से मुक्त हो जाता है।

यस्यानुभवपर्यंता बुद्धिस्तत्वे प्रवर्त्तते।
तद्दृष्टि गोचराः सर्वे मुच्यन्ते सर्व किल्बिषैः॥

जिस पुरुष की बुद्धि ब्रह्मात्मा के अपरोक्ष अनुभव को प्राप्त होती है उस ज्ञानवान् पुरुष की दृष्टि के जितने वे पुरुष विषय होते हैं वे सब जीव पापों से मुक्त होजाते हैं। श्रुति

'तस्य पुत्रादायमुपयंति सुहृदः साधु कृत्यं द्विषंतः पाप कृत्यम्।

उस ज्ञानवान् पुरुष के प्रति भक्तजनों द्वारा भेट, पूजा, आदि में चढ़ाया हुआ जो धन है उसको तो उसके पुत्रादि ले जाते हैं और पुण्य कर्म के फल को उसकी सेवा करने वाले सुहृद भक्तजन ले जाते हैं। और स्वभाविक शरीर से होने वाले पाप कर्मों के फल को निन्दा करने वाले दुष्ट पुरुष ले जाते हैं। इस प्रकार जीवन्मुक्त पुरुष का तपलोक संग्रह के लिये होता है। इति।

तृतीय प्रयोजन

जीवन्मुक्ति का तीसरा प्रयोजन विसंवादाभाव है। लोक व्यवहार में प्रवृत्त हुये व्युत्थान काल में दुष्ट पुरुषों कृत निन्दा अपमानादिकों को श्रवण करते हुवे भी तथा पाखंडी, क्रूर, निष्ठुर, नास्तिक पुरुषों को देख कर भी जो उनके साथ कलह रूप रागद्वेषादि वृत्तियों को उत्पन्न नहीं होने देता है इसी को विसंवादाभाव कहते हैं। जो पुरुष जीवन्मुक्ति के अभ्यास में तत्पर नहीं रहते उनके साथ लोगों का वाद विवाद कलह रूप विसंवाद होता ही रहता है। इति।

चतुर्थ प्रयोजन

दुःख निवृत्ति रूप जीवन्मुक्ति का चतुर्थ प्रयोजन है। दुःख निवृत्ति दो प्रकार की होती है? १ ऐहिक दुःख निवृत्ति २ पारलौकिक दुःख निवृत्ति। आत्मज्ञान द्वारा अनात्माकार वृत्ति रूप ऐहिक दुःखों की निवृत्ति होती है योगाभ्यास से सर्व वृत्तियों के निरोध होने से जीवन्मुक्त पुरुष का चित्त केवल आत्माकार ही रहता है अनात्मा कार नहीं होता इसलिये प्रारब्ध भोग के विद्यमान हुये भी जीवन्मुक्त पुरुष को विक्षेपजन्म दुःख की प्रतीति नहीं होती इसी को ऐहिक दुःख निवृत्ति कहते हैं।

इसी ऐहिक दुःख निवृत्ति को निम्नलिखित श्रुति ने कथन किया है। श्रुतिः।'

'आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः।
किमिच्छन्कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्॥

देह इन्द्रिय आदि अनात्म अहंकार से रहित शुद्ध आत्मा को अपना आत्मा रूप करके यदि इस अधिकारी पुरुष ने जान लिया है तब फिर

किस पदार्थ की इच्छा करके तथा किसके वास्ते संसार के व्यहार में विक्षेपादि क्लेश रूप ज्वर से संतप्त होगा किन्तु नहिं होगा। और आत्मज्ञान से अज्ञान के सर्व संचितकर्मों का नाश हो जाता है तथा आत्मज्ञान के प्रभाव से आगामी कर्मों का स्पर्श नहीं होता अज्ञान सहित संचित कर्म ही पारलौकिक दुःख के हेतु होते हैं अज्ञान सहित संचित कर्मों के नाश होने पर जीवन्मुक्त पुरुष के पारलौकिक दुःखों की निवृत्ति होजाती है, फिर वह जीवन्मुक्त पुरुष अज्ञानियों के समान पुण्य पाप का सोच नहीं करता। श्रुति।

'एतं ह वाव न तपति किमहं साधुना कर्त्तं पापमकरम्।'

अर्थ-मैं पुण्य कर्म को क्यों नहीं करता हूं। और मैं पाप कर्म को किस वास्ते करता हूं। इस प्रकार की निन्दा रूप अग्नि से जैसे अज्ञानी पुरुष तपायमान होता है। तैसे जीवन्मुक्त तपायमान नहीं होता यह जीवन्मुक्ति का चतुर्थ योजन है।

जीवन्मुक्ति का पांचवां प्रयोजन सुखाविर्भाव है। ब्रह्म साक्षात्कार के द्वारा यागाभ्यासी जीवन्मुक्त पुरुष का अज्ञान तथा अज्ञान कृत आवरण और विक्षेप निवृत्त होजाता है और अज्ञान कृत आवरण तथा विक्षेप ही ब्रह्म के आनन्द में प्रतिबन्ध करते हैं प्रतिबन्ध के निवृत्त हुए जीवन्मुक्त पुरुष को निरंतर ब्रह्मानन्द का अनुभव होता है इसी का नाम सुखाविर्भाव है इसी सुखाविर्भाव को श्रुति ने कथन किया है।

'समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो ।
निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत् ॥
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा।
स्वयं तदन्तः करणेन गृह्यते ॥'

अर्थ-समाधि के अभ्यास द्वारा निवृत हो गया है रागद्वेषादि रूप मल जिसका तथा केवल आत्मा में ही जिसके चित्त की स्थिति है उस पुरुष को समाधि काल में जो आत्मस्वरूप सुख का अनुभव होता है वह सुख वाणी से कहने में नहीं आता किन्तु स्वयं अन्तःकरण से ही ग्रहण होता है। यह सुखाविर्भाव जीवन्मुक्ति का पांचवा प्रयोजन है उपरोक्त पांचो प्रयोजनों के अभ्यास द्वारा जीवन्मुक्ति के परिपक्व हुए ब्रह्मवेत्ता पुरुष प्रारब्ध कर्म के समाप्त होने पर अखण्ड एक रस ब्रह्मानन्द रूप से स्थिति को प्राप्त होता है। उस ब्रह्मवेत्ता पुरुष का पुनः उत्थान नहीं होता। श्रुति।

'न तस्यप्राणा उत्क्रामंत्यत्रैव समवलीयंते।
ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येति, ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति ॥

अर्थ-उस ज्ञानवान् पुरुष के प्राण अर्थात् लिंग शरीर मरण काल में इस शरीर को छोड़ कर दूसरे शरीर में नहीं जाता किन्तु यहीं प्रत्यक् आत्मा में लय होजाता है। और वह ज्ञानवान् जीवित् अवस्था में ही ब्रह्म साक्षात्कार से अज्ञान के निवृत्त हुए ब्रह्म रूप हुआ भी प्रारब्ध कर्म के नाश होने पर ब्रह्मरूप होकर स्थित होता है। ब्रह्म के जानने वाला ब्रह्म रूप ही होता है। श्री व्यास भगवान ने ब्रह्म सूत्रों में ज्ञान का यही फल कहा है:-

'अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति।'

अर्थ-इस ब्रह्मवेत्ता पुरुष का इस ब्रह्म में, अभेद ही होता है तथा श्रुति में भी कहा है:-

'यदा सर्वे प्रमुच्यंते कामायेऽस्यहृदिस्थिताः ।
अथमर्त्योऽमृतोभवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥

अर्थ-जब इस अधिकारी पुरुष के हृदय में स्थित सर्व कामनायें नाश होजाती हैं तब यह मरण धर्मा जीव अमृत भाव को प्राप्त होता है तथा अपने ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त होता है। और ब्रह्म भाव को प्राप्त होकर फिर संसार में जन्म मरण को नहीं धारण करता है किन्तु सदा के लिये मुक्त होजाता।

है इसमें श्रुति स्मृति और सूत्र भी प्रमाण हैं। श्रुति न स पुनरावर्त्तते' वह मुक्त पुरुष पुनः जन्म को प्राप्त नहीं होता गीता स्मृति में।

'तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः॥

तिस परमात्मा में ही है बुद्धि तथा मन, और निष्ठा जिन्हों की तथा परमात्मा ही है परम-स्थान जिन्हों का और आत्मज्ञान से नष्ट हो गये हैं सर्व पाप जिन्हों के ऐसे ज्ञानवान पुरुष अपुन रावृत्ति अर्थात् जन्म मरण को प्राप्त नहीं होते हैं। ब्रह्म सूत्र

'अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात्।'

अर्थ-तत्ववेत्ता पुरुषों को पुनः जन्म मरण की निवृत्ति रूप अनावृत्ति ही होती है कारण यह कि श्रुति स्मृति रूप शास्त्र में यही बात पाई जाती है, अतः जीवन्मुक्त पुरुषों को देह पात से अवंतर पुनः शरीर धारण करना नहीं पड़ता यह अटल सिद्धांत है इसी को परम गति तथा परम पद और इसी को कैवल्य मोक्ष कहते हैं यह सद्गुरु की कृपा और जीवन्मुक्ति के अभ्यास से प्राप्त होती है। इति

---

# जीवन-धन

( ले० श्री मोहन शर्मा )

मेरे जीवन-धन! कहाँ अन्तर्हित होगये, तुम्हारे सरस, मधुर सलोने प्यारे मुख, सरोज के रूप, माधुरी भरे प्रेम-प्याले को पीने की चिर संचित आशा को पूर्ण करने के अवसर पर एका एक तुमने क्या किया? अरे निष्ठुर! न मालुम तुम्हें क्या सूझा, क्यों भाग गये! इसमें क्या जा रहा था!

आओ! मेरे प्यारे! निष्ठुर न बनो, केवल एक बार अपनी श्याम, सलोनी, मोहिनी, प्रेम मूर्ति को सामने लाओ, देखलूं जी भर तुम्हारे चिर प्रफुल्ल उल्लसित मुख सरोज को रखलूं अपने हृदय के गूढ़स्थल में तुम्हारी श्यामल, घन दिव्य मनोहर मूर्ति को, भले ही हे मेरे शिल्पी, फिर लौट जाना।

दयालु-स्वामिन्! नियमों के बन्धन को तोड़ दो, मैं तुम्हारे इन नियमों के पार न जा सकूंगा, स्वामिन्! अपनी नवीन, मोद भरी सुखद सुधा-मयी वंशी की तान सुना जीवन को नूतन-प्रवाह में प्रवाहित करदो कृतार्थ होजाऊँगा नाथ!

निर्धन-'धन' मेरे सूने हृदय-गगन को आच्छा-दित करदो प्रपञ्च के प्रबल झोंको से झक झोरा गया अब नहीं ठहर सकूँगा। दयामय, कहीं इस देरमें अन्याय न होजाय। बचालो इसे।

अरे! इसका प्रेम नाम किसने रक्खा! यह तो आग, धधकती हुई प्रत्यक्ष आग है। प्रेम घन वर्षा दो प्रेम, पीयूष बहादो आनन्द की अजस्र, धारा, कुछ कमी न होगी प्रेम भण्डार में, जीवन भर गुण गान होगा तुम्हारी दीन वत्सलता सार्थक होजायगी।

यह कैसा चमत्कार! इस अन्धकार, पूर्ण स्थान में यह अलौकिक आविर्भाव! प्रभो! तुम्हारी विचित्र लीला है, लीलामय नटवर! तुम्हारी इस मोह मरीचिका को हटालो, आओ! मेरी इस छोटी कुटिया में पधारो! नाथ! न मालूम क्यों, मैं कभी कभी तुम्हें देख नहीं पाता, जानता हूं तुम सर्व व्यापी हो कहीं नहीं जाते, पर तुम्हारी माया की अद्भुत यवनिका मुझे मोहित कर देती है प्यारे! यह काली यवनिका उठालो, मान जाओ, अब अशान्ति, सहने की शक्ति नहीं रही, विरहाग्नि में

जल जाऊँगा ले लो अपने पास दूर न करो।

लो! मैं तुम्हारे चरण पकड़ता हूं। सिवा इसके और कोई सहारा नहीं, शून्य है चारों ओर मुझे अपने प्रेम-पूर्ण वरद हस्त से उठालो, मेरे सूने हृदय में प्रेम-धारा बहादो! बहादो!! प्यारे! कंजूस न बनो, बस, जरा पास बैठकर, चरणों में लौटकर रोलूंगा मुझे उसी में शान्ति मिल जायगी।

मैं यहां से टलने का नहीं, तेरे इस मोहन मुखड़े को निहारता रहूंगा, सत्याग्रह करूँगा, न खाना न पीना, तुम्हारे द्वार पर बैठकर तुम्हारी दिव्य, मूर्ति की ओर ही देखता रहूंगा, बैठे रहो। निष्ठुर बने, रहो कबतक बनोगे?

दिव्य धाम के नायक, दीनकी पुकार सुनलो तुम्हारे कहलाने वाले, इस पतित की काली करतूतों को, धो डालो, कहीं यह फिर इस माया मरीचिका के काले फंदे में न फंस जाय। बस इतना ही स्वामिन्

———

# बाल-ब्रह्मचारी श्री कृष्ण

( ले० श्री "प्रेम-पथ-पथिक"

समय ने कुछ ऐसा पलटा खाया है कि जो वस्तु सत्य है और त्रिकाल में भी सत्य है उसको भी प्रमाण द्वारा सिद्ध करके दिखाये बिना विश्वास नहीं होता। आधुनिक समय में ऐसे व्यक्तियों की संख्या की कमी नहीं है जो हमारे चरित्र नायक, अर्जुन के सारथि, आनन्द कन्द भगवान श्रीकृष्ण-चन्द पर भी दोषारोपण करने में नहीं लजाते और कोई २ तो यहां तक आगे बढ़ जाते हैं कि उन्हें व्यभिचारी और अव्वलदर्जे का भोगी भी कह बैठते हैं। उनकी दलील है कि भला १६१०८ गोपिकाओं के साथ रास क्रीड़ा करने वाला भी बाल ब्रह्मचारी की पदवी से भूषित हो तो संसार में ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं जो श्रीकृष्ण से उस पद में पिछड़ा हो। कुछ लोग कहते हैं कि कृष्ण सा चालाक चोर तो कम ही देखने में आया। माखन चोरी करना तो उस सिद्ध हस्त के बायें हाथ का खेल था। उसने तो बड़ी सफाई से स्नानार्थ जल प्रविष्ट गोपाङ्गनाओं का चीर तक चुरा वृक्ष पर छिप रहा और उन्हे बड़ी बेइज्जत कर, नग्न रहने पर भी गुप्तांगों पर से हाथ हटवा कर अपने अमानुषिक अत्याचार का परिचय दिया है। कहीं दूसरे की बहू-बेटियों के साथ भी ऐसी ठठोली करना किसी भले आदमी का काम है? सभी बातों की कोई सीमा होती है लेकिन श्रीकृष्ण तो उस सीमा को लांघ बहुत दूर बढ़ गये।

ऐसी २ अनर्गल बातें कहने वालों को चाहिये कि जरा अपने हृदय पर हाथ रख धैर्य पूर्वक इन लाञ्छनों पर विचार करने की कृपा करें। एकार्थी विचार करने से तो भगवान श्रीकृष्ण पर भारी अत्याचार होगा। यदि अपनी डेढ चावल की खिचड़ी ही पकाते रहेंगे तो उनकी समझ में ये रहस्य नहीं आ सकते। भगवान श्रीकृष्ण की सारी लीलायें रहस्य पूर्ण हैं इसी लिये उन्हें योगेश्वर और योगीराज के नामों से पुकारते हैं। यदि विद्वत्समाज और श्रीकृष्ण प्रेमी भक्त यदि पुस्तकें लिख कर ऐसे२ दोषारोपणों का समाधान कर दिया करें तथा पत्रिकाओं में भी लेख लिख२ कर जनता का भ्रम दूर करने की दया करें तो जनता का बड़ा उपकार हो। यद्यपि ऐसी कुछ पुस्तकें तथा लेख भी मिलते हैं पर उतने से काम नहीं चल रहा है। कुछ लोग तो मन बहलाने के विचार से ही ऐसी ऊट

पटांग बातें बोलते हैं पर उसका प्रभाव बच्चों के कोमल और विशुद्ध हृदय पर बहुत बुरा पड़ता है और आगे चल कर उनके मन में धारणा हो जाती है कि श्रीकृष्ण सचमुच योगी नहीं भोगी थे।

यद्यपि सारे भ्रमों को दूर करना इस छोटे से लेख में सम्भव नहीं तथापि कतिपय भ्रमों का मैं अपनी क्षुद्र बुद्धि अनुसार दूर करने का प्रयास करता हूं। आशा है पाठक तथा पाठिकायें हंसवत् गुणों का ग्रहण करेंगे।

गोपिकायें माखन बनाकर रखती थी और चाहती थी कि श्रीकृष्ण आकार खालें। श्रीकृष्ण चुपचाप लुकछिप कर आते और ले भाग जाते थे क्योंकि इसी में गोपिकाओं को आनन्द मिलता था। यदि श्रीकृष्ण वैसाख जेठ की धूप में भागने लगते तो गोपीगण उन्हें हाथ जोड़ मना करती थीं। देखा तो ऐसा जाता है कि यदि चोर चोरी करते पकड़ लिया जाये तो उसे मारपीट और दण्ड मिलता है पर हमारे माखन चोर तो हृदय चोर हैं फिर इन्हें साधारण चोर समझ लेना हमारी कितनी बड़ी भूल है। भला चोर के लिये भी माखन रखा जाता है और धूप में दौड़ने से मना किया जाता है? यहीं पर माखन चोरी का रहस्य छिपा हुआ है।

रास क्रीड़ा क्या था? गोपिकाओं को प्रसन्न कर संसार को उपदेश देना था कि। यदि अपने मन को अपने आधीन कर लिया जाये तो लाखों स्त्रियों के बीच में रह कर भी मन में तनिकभी काम लोलुपता और कामोद्दीपन नहीं आसकता। ऐसा व्यक्ति नलिनी जलवत् है। स्त्रियां भी ऐसी कि श्रीकृष्ण के पवित्र प्रेम में सुत तथा पति को छोड़ एक दम बेसुध अपने प्रेमी, जीवन धन, के पास खिंच जाती और उनके साथ अनेक क्रीड़ायें करती तथा विश्व को सूचित करती थीं कि देखो यह छोटा सा कृष्ण योगीराज और ब्रह्मचारी है और हमारे पूर्व-जन्म का भाग्योदय का यह मीठा फल है।

हमें तो उन लोगों के सीधेपन पर हंसी आती है जो बारह वर्ष के श्रीकृष्ण को व्यभिचारी कहते हैं। भला १२ वर्ष का बालक विषय भोग को क्या जाने? गोपियों के साथ विषय भोग करे यह बात तो थोड़ी बुद्धि रखने वाला भी समझा सकता है। पर फिर भी लोग कृष्ण भगवान् को गालियां देने से बाज नहीं आते। बच्चे तो छेड़ने ही में आनन्द मानते हैं तो यदि बालक कृष्ण ने राह बाट चलते गोपियों को छेड़ा ही तो इसमें व्यभिचार की बात कौन सी है। अब भी तो लड़के कंकड़ फेंक स्त्रियों के सर के घड़े फोड़ दिया करते हैं तो क्या इसे भी हम व्यभिचार कहेंगे वास्तविक बात तो यह है कि गोपिकाओं को भी तो इसी में आनन्द आता था। जरा गोपिकाओं के प्रगाढ़ प्रेम का एक नमूना देखिये। भगवान् श्रीकृष्ण मथुरा चले। यह संवाद गोप ललनाओं के मध्य बिजुली सा फैल गया। वे प्रेम से विह्वल हो उठीं और श्रीकृष्ण को मनाने चलीं। उस समय उन्हें अपने तन की सुधि जाती रही। मन भी काबू से बाहर होगया। उन्हें रोमांच होगया और कण्ठ बन्द होगया। वे कुछ न बोल सकीं। पागल सी टकटकी लगा कर प्रेम की भिक्षा मांगने लगी। मानो चकोर चन्द्रमा को निहार रहा हो। वे श्रीकृष्ण के प्रेम-विरह में रथ के के आगे, घोड़ों के नीचे और पट्टियों के आगे सोगई। उस समय उनके पवित्र प्रेम की नदी वह चली। आंखों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगे। जीवन की अपेक्षा मरण ही श्रेष्ठ विदित होने लगा और वे प्राण-त्याग करने की चिन्ता करने लगी। उनकी आंखें जिधर गई उधर ही कृष्ण दीख पड़े। ऐसा कोई भी स्थान नहीं जहां चित चोर न दीख

पड़े। पर योगीराज बाल ब्रह्मचारी श्रीकृष्ण इन्हें सच्चा प्रेम पीयूष पिला इनके प्रेम की अधिक परीक्षा के लिये चले ही गये। क्या भगवान् श्रीकृष्ण को व्यभिचारी कहने वाले बता सकते हैं कि एक विषय-कामी पुरुष इस तरह से अपनी प्रेमिकाओं को दुकरा कर छोड़ सकता है? क्या इस प्रकार का व्यभिचारी भी किसी ने देखा है? ओफ़! कितना अच्छा उदाहरण है! बलिदान का कैसा सुन्दर दृश्य है! वैराग्य का कैसा जीता जागता नमूना है! धन्य हो भगवन् धन्य हो। तुम्हारी लीलायें अपरम्पार हैं। बस जिसे जना दो वही जान सकता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने बड़े मार्के की बात कही है:-

सोई जाने जेहि देहु जनाई, तुम्ही जानत तुमही होई जाई।
तुम्हरी कृपा तुम्हीं रघुनन्दन, जान हि भक्त भक्त उर चंदन॥

चीर-हरण लीला तो और भी रहस्य-मय है। यदि सांसारिक तथा व्यावहारिक बात ही लें तो हम देखते हैं कि नग्न स्नान करना मना है। जल में नग्न स्नान करना तो शास्त्र के विरुद्ध ही है। स्त्रियों को तो नग्न स्नान करना ही नहीं चाहिये औरसे भी खुले स्थान में जहां किसी के आने जाने की रोक टोक न हो। गोप-बालायें भी इसी प्रकार नग्न स्नान कर रही थी कि अचानक श्रीकृष्ण की दृष्टि वस्त्रों पर पड़ गई और उन्हें ठोस शिक्षा देने के अभिप्राय से उनके वस्त्र छिपा दिये। उन्हें समझाना चाहा कि "जल में नग्न होकर स्नान नहीं करना चाहिये तथा वस्त्र उतार कर भी स्नान करना बड़ा लज्जा जनक है और कम से कम भारत वर्ष की स्त्रियों के लिये तो यह उपहासास्पद है। अतएव मैंने वस्त्र इसी व्यावहारिक ज्ञान की शिक्षा के अर्थ छिपा दिये हैं। तुम्हें भविष्य में ऐसा आचरण नहीं करना चाहिये।"

यहां यह प्रश्न उठे बिना नहीं रह सकता कि यदि इतनी ही शिक्षा देनी थी तो इतना समझाने पर भी उन गोपियों से उनके गुप्ताङ्गों पर से हाथ ऊपर क्यों उठाने को कहा? क्या इस तरह की बेहूदगी भी असभ्यता और व्यभिचार के अन्तर्गत नहीं आती है? क्या इसका भी कोई उत्तर है? क्या श्रीकृष्ण को व्यभिचारी समझने के लिये यह दृढ़ प्रमाण नहीं है? प्रिय पाठक पाठिकायें! जरा धैर्य पूर्वक विचारें तो इसका रहस्य-उद्घाटन हो जायेगा। थोड़ी बुद्धि से काम लेने पर भी यह बात समझने में देर नहीं लगती कि यदि श्रीकृष्ण इतने मन चले थे तो फिर उन्हें ऐसा करने का अवसर तो चहार दिवारी के अन्दर भी मिल सकता था तो क्या कारण है कि वह खुले आम ऐसा कर लोकापवाद सहते यदि उनके मन में तनिक भी बुरा विचार आता तो वे पबलिक रोड पर ऐसा दिन दहाड़े डकैती कैसे कर बैठते? चलिये, जरा और आगे बढ़ कर सोचें। श्रीकृष्ण ने उन्हें ऐसा कर एक बड़े गुप्त रहस्य का भेद बताया। उन्होंने गोपिकाओं को वेदान्त का उपदेश दिया। भगवान् ने अपने और उनके बीच का परदा हटा अद्वैतवाद का रहस्य समझाया। इस समय गोपियां ज्ञानावस्था की सीमा तक पहुंच गई थीं अतएव उन्हें ऐसी शिक्षा देना अत्यावश्यक था। इसी को सम्यग् रूप से समझाने के लिये तथा ज्ञान का उपदेश देने के अभिप्राय से भगवान् हाथ रूपी अज्ञान और द्वैत के परदे को हटा देने को कहा और जब उनका अज्ञान दूर होगया तो उन्हें वस्त्र दे दिया और इस प्रकार अद्वैत ज्ञान जो समझने में बड़ा ही कठिन है सहज ही में व्यावहारिक रीति से बता दिया। इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण की प्रत्येक बातें रहस्य पूर्ण हैं और उनका समझना सर्व साधारण व्यक्ति के लिये दुस्तर है।

अतएव केवल अपनी अज्ञानता के कारण हमें कोई अधिकार नहीं कि हम उनपर दोषारोपण करें।

एक बार कुछ गोपबालाओं के मन में यह सन्देह हुआ कि जो श्रीकृष्ण अहर्निशि हमारे बीच अनेक प्रकार की रासक्रीडायें करते हैं और हमसे किसी प्रकार से अलग नहीं रहते भला वह बाल ब्रह्मचारी कैसे? भगवान् उनके मनोभावना को ताड़ गये और उन्हें ने एक सहज उपाय से उदाहरण द्वारा समझा देने के लिये एक दिन उनसे कहा 'बालाओ! यमुना की उस ओर दुर्वासा ऋषि रहते हैं। यदि तुम उन्हें पक्वानादि से संतुष्ट करो तो तुम्हारा बड़ा कल्याण हो। भला वे उनकी आज्ञा कैसे उल्लंघन कर सकती थीं। एक दिन वे पूरी सामग्री ले दुर्वासा ऋषि के सत्कारार्थ चलीं। पर जब वे यमुना किनारे पहुंची तो उनका हृदय कांप उठा। यमुना फूली हुई थी और कोई नाव या बेड़ा पार करने के लिये नहीं था। दौड़ी २ श्री कृष्ण के पास आकर सब बातें कह सुनाई। श्रीकृष्ण ने कहा "जाओ और यमुना से कह दो कि यदि कृष्ण बाल ब्रह्मचारी हैं तो हे यमुने! मार्ग दे दे।" यद्यपि यह सुन उन्हें आश्चर्य हुआ पर वे उनके कहे हुये पर विश्वास कर यमुना का जल घट गया और वे सकुशल उस पार पहुंच गई।

वहाँ पहुंच कर दुर्वासा जी को खिलाने लगीं और सारी सामग्री समाप्त हो जाने पर भी उनका पेट न भरा। संध्या हो चली थी इसलिये गोप बालायें आज्ञा मांग वापिस चली पर यमुना तट पर पहुंच के देखा कि जमुना फिर लबालब भर गई हैं। वे बड़ी चिन्तित हुई और दुर्वासा ऋषि से मार्ग बता देने के लिये निवेदन किया। दुर्वासा जी के पूछने पर कि वे उधर से कैसे आई, उन्होंने सारी बातें कह सुनाई और साथ २ अपना संदेह भी निवेदन किया। दुर्वासा ऋषि ने उनके संदेह को सम्यक् प्रकार से दूर कर दिया और कहा कि 'बाले! इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि श्रीकृष्ण बाल ब्रह्मचारी हैं। वह तुम लोगों के बीच रहते हुये जल में कमलवत् हैं अतएव तुम्हारे मन में यह शंका उत्पन्न नहीं होनी चाहिये।" जाओ, और यमुना से कह दो कि "यदि दुर्वासा निराहारी है तो मार्ग दे दे।" यद्यपि उन्हें इस बात पर विश्वास नहीं हुआ कि जो दुर्वासा ऋषि अभी तुरन्त इतना भोजन कर चुके हैं वह निराहारी कैसे हो सकते हैं तथापि यमुना किनारे जाकर वैसाही कहा और उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब यमुना ने उन्हें मार्ग दे दिया तो वे उस तट पर पहुंची और श्रीकृष्ण कन्हैया को मुस्कुराते देख निराहारी वाली शंका के समाधानार्थ निवेदन किया। श्रीकृष्ण भगवान् बोले तुम्हारी शंका व्यर्थ है। जो दुर्वासा एक तृण भी अहार नहीं करते वे इतना भोजन कैसे कर सकते हैं। उन्होंने तो केवल तुम्हारी प्रसन्नता के लिये यह लीला रची। तुम निश्चय जानो कि दुर्वासा निराहारी हैं। तुमने तो परीक्षायें भी लेली फिर संदेह का स्थान ही कहां रह जाता है। गोपिकायें इस उत्तर से संतुष्ट हुई और अपने प्राण प्यारे पर जो उन्हें संन्देह हुआ था उसके लिये पश्चात्ताप करने लगीं।

इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण की प्रत्येक लीला एक न एक रहस्य से परिपूर्ण हैं पर हम अपनी अल्प बुद्धि के कारण उनमें दोष दृष्टि का समावेश कर अर्थ का अनर्थ कर योगीराज को भोगीराज समझ बैठते हैं। हम अपनी क्षुद्र बुद्धि के कारण ही दूसरे की मां-बहन को उसी पवित्र दृष्टि से न देख उनमें विषय भोग की दृष्टि से देखते हैं।

# प्रेमा भक्ति के साधन

## गतांक से आगे

( ले० भक्तवर श्री मथुराप्रसाद जी )

प्रिय पाठक वृन्द कार्तिक मास के अंक में प्रेमा भक्ति के साधनों का आरंभ होकर इससे पूर्व के अंकों में चतुर्थ भाव जो सख्य है उसके लक्षण पर्य्यन्त वर्णन किया जाचुका है पांचवां भाव मधुर है उसका वर्णन अब किया जाता है सो श्रवण कीजियेः-

मधुर भाव को ही सखी भाव कहते हैं यह भाव पूर्व निरूपित चार भावों से उत्कृष्ट और मुख्य समझा जाता है। इस भाव में मुख्य ब्रज गोपिकायें प्रेम की ध्वजा समझी जाती हैं आज कल बहुत से गाने नाचने के शौकीन पुरुष अपने को सखी कह कर इसका अनुकरण करते हुए दृष्टि गोचर होते हैं और वस्तुतः उनके आचरण इस भाव के सर्वथा विरुद्ध पाये जाते हैं। अपना जनाना भेष बनालेना और नाम भी उसीके अनुकूल जनाना रख कर नाच गा लेना तो सुलभ है परन्तु इसका निर्वाह अत्यन्त ही कठिन है सखी भाव का अधिकारी ऐसा मनुष्य हो सकता है जिस के काम वासना सर्व प्रकार से नष्ट हो चुकी हो। यदि किसी अति सुन्दरी युवती ( चाहे वो इन्द्र के अखाड़े की अप्सरा ही हो ) के साथ एकान्त में सहवास होने पर भी काम की बाधा न हो तब समझना चाहिये कि सखी भाव का अधिकार उस पुरुष को प्राप्त हो गया। अन्यथा ऐसा पुरुष जिसके विषय भोग वासना बनी हुई हो कदापि सखी भाव का अधिकारी नहीं हो सकता प्रत्युत निन्दनीय और घृणा के योग्य है।

प्रभु को कान्त ( अपना पति ) मान कर रिझाना और उसे आनन्द देना सखी भाव है। ऐसा गोपियों में था और उनके अनन्तर मीरां आदि परम प्रेमियों को प्राप्त हुआ। बड़े २ आचार्य महानुभाव इसी का अनुकरण करते रहे कलिकाल में इसका निर्वाह अति दुर्लभ है वास्तविक में देखा जाय तो जीवमात्र ईश्वर की प्रकृति होने से पुरुष केवल एक परमात्मा ही सिद्ध होता है।

जीव गोस्वामी और मीरांबाई का वृन्दावन में इसी सम्बन्ध में एक अपूर्व विचार और सत्संग हुआ था।

एक बार मीरां बाई जी ने वृन्दावन में गो स्वामी जीव नामी महात्मा के दर्शनों के लिये जाने का विचार करके उनसे समय पुछवाया, कि महात्मा जीव गोस्वामी किसी स्त्री का मुख नहीं देखते और वार्तालाप करने से बचते थे उत्तर मिला मीरां स्त्री शरीर से है गोस्वामी जी नहीं मिल सकते। मीरां जी यह उत्तर सुन कर स्वयं उनके स्थान पर जा पहुंची और निवेदन किया कि बीच में परदा डाल कर बात करने में क्या हानि है इस पर गोस्वामी जी राजी हो गये। पर्दे के अन्दर गोस्वामी जी बैठ गये, मीरां जी ने पर्दे के बाहिर बैठकर प्रणाम कह कर यह शब्द कहे।

आहा आज यह नवीन बात सुन कर बड़ा भारी आनन्द हुआ कि आज से पहले तो प्राणी मात्र स्त्री और केवल परमात्मा ही एक पुरुष ( पुरुषोत्तम ) सुनने में आये थे आज दूसरे पुरुष आप

और प्रकट हुए।

इतना सुन्ते ही जीव गोस्वामी लज्जित होगये पर्दा फाड फेंका और मीराँ जी से देर तक सत् चर्चा करते रहे। और पहले किया हुआ नियम तोड़ कर क्षमा मांगी महात्माओं का लक्षण यही है कि दूसरे से युक्ति युक्त बात सुन कर अपनी बात की पक्ष नहीं करते तुरन्त स्वीकार कर लेते हैं। गीता में सातवें अध्याय में अपनी दो प्रकृतियें भगवान् ने बतलाई हैं। अपरा, और परा, इनमें परा प्रकृति जीव मात्र को कहा है। प्रकृति और शक्ति एक ही का नाम है। तदनुसार जीव मात्र परमेश्वर की परा प्रकृति स्त्री सिद्ध होते हैं।

कान्त कान्ता भाव में भी भेद इतना है कि एक तो प्रियतम के साथ अनुराग अपने सुख की प्रधानता के लिये होता है संसार में पत्नी अपने पति से जो प्रेम करती है वो इस अभिप्राय से कि उसको संसारी सुख विषयानन्द तथा भरण पोषण आदि की प्राप्ति पति से होती है। यद्यपि पति के अभाव में माता पिता या पुत्र भी भरण पोषण करते हैं तथापि पति के द्वारा जो सुख मिलता है वह अन्य से नहीं मिलता। इसी को स्वसुख कहते हैं भगवान् जगत् पति श्री कृष्ण के साथ कुबरी का जो प्रेम था वो इसी कोटि का था। दूसरा स्व सुख तत्सुख मिश्रित इसमें कान्त अपना और स्वामी का दोनों सुख अभीष्ट रख कर अनुरक्त होती है। जिसमें उदाहरण रूप श्रीकृष्ण महाराज की पटरानियां रुक्मिणि जी आदि समझी जाती हैं। तीसरा पराकाष्ठा का भाव केवल तत्सुख जानना चाहिये सो श्रीराधा महारानी आदि ब्रज गोपियों में ही था। वे सब प्रेम की मूर्तियां क्षण मात्र का वियोग प्यारे का सह नहीं सकती थीं तथापि उनके शरीरों से विरह दशा में भी प्राण वियोग न होने का मुख्य कारण ये ही था कि प्राणनाथ के मथुरा जाने के समय ऐसे वचन उनके हृदय में दृढ़ स्थान पाये हुए थे कि हम फिर आ कर तुम से मिलेंगे। उनको दृढ़ आशा थी कि प्रभु अवश्य अपनी प्रतिज्ञा का पालन करेंगे और प्रभु के पधार ने पर यदि हम न मिलीं तो उनके चित्त को महा कष्ट होगा हमारे न होने पर किसके साथ रास विलास करेंगे।

गोपियों को केवल प्यारे कृष्ण के सुखार्थ प्राण रक्षा करनी पड़ी। इसी का नाम तत्सुख सुखी कहा गया है पाँचों भावों में यह मधुर अर्थात् सखी भाव ही उत्कृष्ट समझा जाता है। श्री गौरांग महा प्रभु जब सन्यास लेकर विचरते थे और पंडित सार्व भौम भट्टाचार्य की प्रेरणा से गोदावरी तट पर राय रामानन्द से मिले थे उन्होंने राय रामानन्द से जीव के कल्याण के विषय में जो प्रश्न किये और रायमानन्द क्रम से उत्तर देते गये अन्त में यही सिद्धान्त निकला कि सखी भाव से बढ़ कर ईश्वर प्राप्ति का और कोई उपाय या साधन नहीं है उसमें भी श्रीराधा जी का जिस दर्जे का अनुराग और भाव श्रीकृष्ण के साथ था वैसा दूसरे का न हुआ और न हो सकता है।

इस सखी भाव के उत्कृष्ट होने में एक दृष्टान्त है कि एक अमोलक रत्न किसी डिब्बे में बन्द है उसमें एक रेशमी वस्त्र बिछा हुआ है जिसके ऊपर वो रत्न कपड़े में बन्धा हुआ और रुई में लिपटा हुआ रक्खा है। सब से बाहिर वो डिब्बा दास्य भाव के स्थान में समझो दास का काम हिफाजत रखने का है फिर जो वस्त्र उसमें बिछा है वह वात्सल्य भाव के स्थानापन्न है बच्चा अपनी माता की छाती पर बेधड़क सो जाता है। इसी प्रकार वो रत्न उस वस्त्र के ऊपर है। तदनन्तर जिस वस्त्र में वह बंधा हुआ है वह सखा भाव के

स्थान में मानो, क्योंकि प्यारे सखा कभी ऊपर कभी नीचे रहता है। सो रत्न उस वस्त्र के ऊपर और नीचे उसी में बंधा हुआ है फिर जो रुई उसके अंग से लिपटी हुई है वो सखी भाव की जगह समझो अर्थात् सब से अति सामीप्य उस रत्न से रुई को है उसके बाद जिस वस्त्र में बंधा है वो रुई की अपेक्षा बहिरंग है और डिब्बे में जो बिछा हुआ वस्त्र है वो उस वस्त्र की अपेक्षा से बहिरंग है और डिब्बे में जो बिछा हुआ वस्त्र है वो उस वस्त्र की अपेक्षा से बहिरंग रक्षक डिब्बा है।

इस दृष्टान्त से सिद्ध होता है कि दास्य के अपेक्षा वात्सल्य और वात्सल्य की अपेक्षा सख्य बहिरंग है और मधुर सखी भाव इन सब की अपेक्षा अन्तरंग है जो खास अंग से स्पृष्ट है यहाँ तक पाँचों भावों का निरूपण हो चुका अब प्रेम जो ऊपर कहे हुए आठों साधनों करके साध्य है उसका वर्णन आगे किया जाता है।

## प्रेम

इसका लक्षण क्या हो सकता है यह तो अनिर्वचनीय पदार्थ है जैसे वेदान्त में ब्रह्मको अनिर्वचनीय बतलाया है उसी प्रकार नारदभक्ति सूत्र में प्रेम को कहा है (अनिर्वचनीयं प्रेम स्वरूपम्) बिहारी कवि ने वर्णन किया है।

लिखन बैठ जाकी सबी गहि गहि गरब गरूर,
भये न केते जगत के चतुर चितेरे कूर।

प्रेम और परमात्मा एक ही वस्तु है, भक्त माल के कर्ता श्रीनाभाजी ने चार वस्तुओं को एक माना है केवल नाम भिन्न २ हैं (भक्ति भक्त भगवन्त गुरु चतुर्नाम वपु एक) इसमें भक्ति शब्द प्रेम का ही वाचक है। अंग्रेजी भाषा में इसी को लव Love कहा है। और माना है कि Love is God and God is Love अर्थात् प्रेम ही खुदा और खुदा ही प्रेम है। रसखान जी महात्मा कहते हैं कि:-

प्रेम हरी को रूप है त्यों हरि प्रेम स्वरूप।
एक होय दो यों लसे ज्यों सूरज अरु धूप॥

मीर एक उर्दू के प्रसिद्ध कवि कह रहे हैं कि:-

तू न होवे तो नज्म कुल उठ जाव।
सच्च है शायरो खुदा है इश्क॥

ईश्वर और प्रेम में भेद न होने पर भी प्रेम का लक्षण नारद महामुनि ने यह लिखा है।

'गुण रहितं कामनारहित प्रतिक्षणं वर्द्धमानम्।
अविच्छिन्न सूक्ष्मतरमनुभव स्वरूपम्॥

अर्थात् गुण और कामना रहित क्षण क्षण में बढ़ने वाला कभी न टलने वाला अति सूक्ष्म केवल अनुभव गम्य प्रेम है।

गुण रहित-जिसके साथ प्रेम हो जाता है उसके किसी गुण दोष पर दृष्टि नहीं जाती।

मजनू को प्रेम लैला पर हुआ। लैला में कोई सौन्दर्य, आदि ऐसा गुण न था। लोगों को आश्चर्य था कि मजनू क्या देख कर लैला पर आसक्त हुआ जब मजनू से पूछा तो उसने उत्तर दिया कि लैला राबचपूमे मजनू बा यद दीद-अर्थात् लैला को मजनु की आँख से देखना चाहिये। प्रेमी को प्यारे के दोष भी गुण प्रतीत होते हैं। नितान्त प्रेम का होना किसी गुण पर निर्भर नहीं इसी प्रकार शुद्ध प्रेम जहाँ होता है वहां कोई कामना लेश मात्र नहीं रहती। प्रीतम के हित पर दृष्टि रह कर स्वार्थ का लेश भी नहीं होता। तत्सुख इसी का नाम है। जहाँ स्वार्थ पर दृष्टि हो वहाँ प्रेम नहीं समझना और क्षण क्षण में प्रेम की वृद्धि होती है कभी विच्छेद नहीं होता प्रेम की गति अति ही सूक्ष्म है उसका अनुभव केवल प्रेमी को होता है।

छिन हि चढै छिन ऊतरे सो तौ प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिंजर बसै प्रेम कहावै सोय॥

प्रेम का नशा कभी उतरता नहीं जो किसी कारण से उतर जाय सो प्रेम नहीं।

प्रेम के नशे में प्रेमी को वस्तु नहीं भाती घर बार दौलत हुकूमत कुछ नहीं सुहाती शरीर की संभाल तक जाती रहती है। केवल प्यारे की तरफ लौ लग जाती है सुन्दरदास जी महात्मा ने कहा है।

सवैया

प्रेम लग्यो परमेश्वर से तब भूल गयो सगरो घर बारा।
ज्यों उन्मत्त फिरै जित ही तित नैक रही न शरीर संभारा॥
सांस उसास उठे प्रति रोम चलै दृगनीर अखंडित धारा।
सुन्दर कौन करै नवधा विधि छाक परो रस पीवत वारा॥

श्रीमद् भागवत् में स्वयं भगवान् ने अपने प्रेमी भक्त के लक्षण इस प्रकार वर्णन किये हैं।

वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं हसत्यभीक्ष्णं रुदति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नौतिनृत्यते मद् भक्ति युक्तो भुवनंपुनाति

भगवान् आज्ञा करते हैं कि जिसकी वाणी प्रेम से गद् गद् हो जाती है चित्त जिसका अति कोमल पिघलने लगता है। निरन्तर हस्ता कभी रोता भी है लज्जा त्याग कर गाने लगता और शब्द करता. नाचता है ऐसा मेरा प्रेमी भक्त संसार को पवित्र करता है। इतना ही नहीं मैं उसके पीछे चलता हूं और उसके चरण की रज से अपनी आत्मा को पवित्र करता हूं।

अनुव्रजाम्यहं नित्यं प्रयतेऽत्यङ्घ्रि रेणुभिः।

प्रिय पाठकगण! विचार कीजिये प्रेम का दरजा कितना बड़ा है कि चराचर सृष्टि का कर्ता भर्ता सर्वेश्वर परमात्मा ही जब प्रेम के आधीन हो जाता है तो इससे बढ़ कर कौनसा पदार्थ हो सकता है। महात्मा नारायण स्वामी जी ने प्रेम और प्रेमी के लक्षण इस प्रकार कहे हैं।

लगन लगी गोपाल को भूली तन की सार।
नारायण मछरी भयो श्याम रूप जल धार॥
प्रेम सहित अंसुवन भरे धरै युगल को ध्यान।
नारायण ता भक्त को जगमें दुर्लभ जान॥
नारायन या प्रेम को नद उमड़त जा ठौर।
तुरत लाज मरजाद के तट काटत है दौर॥
नारायन जप जोग तप सब से प्रेम प्रवीन।
प्रेम हरी को करत है प्रेमी के आधीन॥
नारायन यह प्रेम सुख मुख से कह्यो न जाय।
ज्यों गूंगो गुड़ खात है सैनन स्वाद लखाय॥
नेम धर्म धीरज समझ सोच विचार अनेक।
नारायन प्रेमी निकट इनमें रहै न एक॥
रूप छके झूमत रहैं तन को तनक न ज्ञान।
नारायन दृग जल भरे यही प्रेम पहचान॥

## स्वामी राम रूप जी की बानी

प्रेम फांसी फंस रहा है मन जिन्हों का चाव से।
मस्त हैं दिलदार के संग आशिकी के भाव से॥
सीस को ले हाथ में करते हैं बांवाजी सदा।
सिद्ध के दिल से हो रहे महबूब के ऊपर फिदा॥
इश्क में जो सन रहे हैं मौत से डरते नहीं।
बिन पिया इकसा आते आराम दिल धरते नहीं॥
आसरा जिनको सदा इक पीव के दीदार का।
राम रूप आनन्द उनको तुच्छ है संसार का॥

# साधारण-योग

## चतुर्थांक से आगे

( ले० श्री कमुनाप्रशाद श्रीवास्तव )

### यम

यम पांच हैं यथाः–अहिंसा, सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

### १–अहिंसा।

मन, वचन और कर्म से जीव मात्र को दुःख न देना अहिंसा है। जो मनुष्य मन, वचन, और कर्म से किसी का हृदय नहीं दुखाते उन्हें कभी कोई कष्ट नहीं होता। जब तुम किसी को गाली न दोगे तो कोई तुम्हें क्यों गाली देगा? जब तुम किसी को न सताओगे तो कोई तुम्हें क्यों सतावेगा? यदि किसी ने तुम्हें दुःख दिया है तो चिन्ता मत करो वह स्वयं दुख पावेगाः–

जो तो को कांटे बोवे, वाको बो तू फूल।
तो को फूल के फूल हैं, वाको हैं त्रिसूल॥

अहिंसा की दृढ़ता पूर्वक स्थापना हो जाने से आस पास बैर नहीं फटक सकता।

'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैर त्यागः।

किसी नगर में सदना कसाई रहता था। वह बकरे का मांस बेचा करता था। एक दिन सांझ के समय बादशाह के अर्दली ने उसकी दुकान पर आकर बादशाह के लिये मांस मांगा। उस दिन उसका सब मांस बिक गया था। दूसरी दुकानों पर भी यही हाल था। बकरा ज़िबह करने से शेष मांस नष्ट हो जाने का भय था। परन्तु विवश था। अतएव वह छुरी लेकर बकरे के पास गया और उसका अंड कोश उतार कर बादशाह के पास भेज देना चाहा। यह देख बकरा हंसा और फिर रोने लगा। सदना ने उससे हंसने और रोने का कारण पूँछा। बकरा बोला।

भाई साहिब! जन्म जन्मान्तरों में तुम मुझे ज़िबह करते रहे हो और मैं तुम्हें ज़िबह करता रहा हूं। इसमें मुझे और तुम्हें दोनों को क्षण मात्र का कष्ट भुगतना पड़ता था। परन्तु आज जो तुमने नया हिसाब निकाला है यही देख कर मुझे हंसी आई है। और मेरे रोने का कारण यह है कि रात्रि भर मुझे कष्ट सहना पड़ेगा। परन्तु तुम्हें इससे क्या? तुम अपना काम करो। जब मेरी बारी आवेगी तब मैं भी ऐसा ही करूंगा और तुमको भी अपनी बारी से कष्ट भोगना पड़ेगा।

बकरे की यह बात सदना के मन में बैठ गई। उसके हाथ से छुरी गिर पड़ी। उसने अर्दली से साफ कह दिया कि उसने यह काम छोड़ दिया है। अर्दली उसे बादशाह के पास ले गया। उसने आदि से अन्त तक संम्पूर्ण कहानी बादशाह को सुनाई। बादशाह का भी दिल भर आया उन्होंने उसे माफ़ी दी।

शास्त्र का भी मत है कि (१) पशु बेचने वाला (२) पशु खरीदने वाला (३) पशु मारने वाला (४) मांस बेचने वाला (५) मांस खरीदने वाला (६) मांस पकाने वाला (७) मांस खाने वाला और (८) मांस खिलाने वाला पाप के भागी होता है। इनमें नम्बर ३, ४ और ८ के छुटकारे का तो कोई उपाय ही नहीं है।

'इस हाथ दे उस हाथ ले'

एक दिन नोशेखां बादशाह दरबार में बैठा हुआ इन्साफ कर रहा था। उसके इन्साफ को

देख कर, एक हकीम ने आश्चर्य से पूछा:-

बादशाह सलामत! ऐसा इन्साफ करना आपको किसने सिखाया है?

बादशाह ने उत्तर दिया: एक दिन मैं शिकार खेलने को गया था वहां मैंने देखा कि एक पियादे ने कुत्ते को पत्थर उठा कर मारा। कुत्ता लंगड़ा हो गया। पियादा थोड़ी ही दूर गया था कि वहां से एक सवार निकला उसके घोड़े ने पियादे को लात मारी। लात लगने से पियादे की टांग टूट गई। सवार थोड़ी ही दूर गया था कि उसके घोड़े का पांव एक चूहे के बिल में जा पड़ा और वह मुरचा खा गया। यह 'इस हाथ दे उस हाथ ले' के दृश्य का मेरे मन पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि उसी समय से मैंने सच्चा इन्साफ करने का संकल्प कर लिया है।

'बुरा गरीब का मारना, बुरी गरीब की आह।
'मुये जीव की खाल से, लोह भस्म हो जाय॥'

निर्बल को कभी न सताना चाहिये। जिस प्रकार आपको अपनी जान प्यारी है उसी प्रकार उसे भी अपनी जान प्यारी है। फारसी की एक युक्ति है:-

बतर्स अज़ आह मज़लूमां कि हंगामे दुआ करदन।
इजाबत अज़दरे हक़, बहरे ईसा क़बाल मी आयद॥

भावार्थ

'तुलसी आह गरीब की हरिसों उही न जाय'।

तनक विचारिये तो सही! यह प्लेग और मनहूस अकाल क्यों और कहां से आते हैं? क्या यह निर्बलों को सताने का दण्ड नहीं है? यह कहां का धर्म है? कि एक गाय जो दूध और घी से सत्कार करे और उसी की गर्दन पर छुरी चलाई जावे!

विशेष क्या कहें, रिश्वत लेना, झूठी साक्षी देना, गाली गिलोज बकना, मारना पीटना धोका देना, हंसी ठट्ठा करना, चुगली खाना, दगा फरेब आदि भी हिंसा है क्योंकि इनसे मन को दुख पहुंचता है। अतएव इनसे भी बचना चाहिये।

अहिंसा परमो धर्मः।

अर्थात् हिंसा न करना ही सब से बड़ा धर्म है।

## २-सत्य।

'पर हितार्थं वाङ्मनसोयथार्थत्वं सत्यम्।'

प्राणियों के हित के लिये मन और वचन से यथार्थ भाव प्रगट करना 'सत्य' है अर्थात् जो मिथ्या नहीं है वही 'सत्य' है मोटी बात यह है कि मिथ्या अर्थात् झूठ को त्याग देने का नाम 'सत्य' है।

'सत्य प्रतिष्ठायां क्रिया फलाश्रयत्वम्।'

अन्तः करण में सत्य की प्रतिष्ठा हो जाने से बिना क्रिया किये ही उस का फल मिल जाता है।

जब भूल से भी मन में मिथ्या विचार उत्पन्न न हों और स्वप्न में भी झूठ का दर्शन न हो तब सत्य की साधना सिद्धि होती है। उस समय किसी रोगी को निरोग होने के लिये कहा जाय तो वह उसी क्षण रोग मुक्त हो जाता है। इसी लिये कहते हैं कि जो कुछ कहना हो मन वचन और कर्म से सत्य कहो, जो करना हो मन वचन और कर्म से सचाई के साथ करे। सारांश यह है जो मन में हो वही बाहिर हो और जो बाहिर हो वही मन में हो।

किसी अंग्रेजी कारखाने में एक बंगाली नौकर था। एक दिन उसके स्वामी ने कहा:-

बाबू! बड़ा आवश्यक काम आ पड़ा है। तुम कल रविवार को आकर काम करो?

बंगाली सत्यवादी था। उसने उत्तर दिया:-

महाशय! रविवार का दिन मैंने ईश्वराराधना के लिये निर्दिष्ट कर रक्खा है। कृपा कर मुझे

क्षमा कीजिये। स्वामी को बहुत बुरा लगा। परन्तु वह कुछ कह न सका। दूसरी बार स्वामी ने उससे झूठी गवाही देने को कहा। यह सच्ची बातें जानता था। उसने झूठी गवाही देने से इनकार कर दिया। स्वामी ने क्रोध में आकर उसे बरखास्त कर दिया क्लर्क निर्धन था। परन्तु नौकरी जाने के डर से उसने झूठ बोलना स्वीकार नहीं किया। कुछ दिनों तक घर बैठा रहा। दैवयोग से एक बड़े कारखाने के स्वामी को एक सच्चे और ईमानदार क्लर्क की आवश्यकता हुई। उसने अंग्रेजी कारखाने के स्वामी को लिखा। अंग्रेजी कारखाने का स्वामी क्लर्क से अप्रसन्न था, परन्तु वह उसकी सचाई और ईमानदारी पर मुग्ध होरहा था। उसने उसीकी शिफारश की और लिखा कि जीवन भरमें यही एक मनुष्य सच्चा और धार्मिक मिला था जिसे सचाई और ईमानदारी के कारण ही मुझे नौकरी से अलग कर देना पड़ा है। इस सच व्यवहार का परिणाम यह हुआ कि क्लर्क को नौकरी मिल गई और थोड़े ही दिनों में वह अपने स्वामी का विश्वास पात्र बन कर मालदार हो गया।

## ३–अस्तेय।

पराई वस्तुओं के अपहरण को त्याग देने का नाम अस्तेय है। यह भी मानसिक वाचिक और कायिक तीन प्रकार का है।

हमारा उद्देश्य धन संग्रह नहीं, परन्तु उन्नति है। मन में ऐसा भाव दृढ़ कर लेने से पराई वस्तु अपहरण करने की इच्छा दूर होजाती है।

दूसरे का द्रव्य हो अथवा अपना सब ही बाहरी प्रकृति रूप हैं। हमारा प्रयोजन प्रकृति को त्यागना है। ऐसी धारणा होने से पराये धन का लोभ नहीं होता और अस्तेय की साधना सिद्धि होती है।

अस्तेय की प्रतिष्ठा होते ही सब धन रत्न आदि साधक के पास स्वयं चले आते हैं:-

सुख संपत्ति सब बिनहिं बुलाये।
धर्म शील पर जाहिं पराये॥
अन इच्छित आवत घर आई।
घर बस रात दिवस की नाई॥

पुरुष को भोग कराने के लिये ही प्रकृति ने कुञ्ज सजाये हैं पुरुष इनसे जितना ही दूर भागेगा प्रकृति उतना ही अपना सर्वस्व लेकर उसके चरण तल में अर्पण करेगी।

भागती फिरती थी दुनियां, जब तलब करते थे हम।
अब जो नफ़रत हमने की, वह बेकरार आने को है॥

यदि तुम प्रकृति की ओर ध्यान नहीं दोगे तो वह तुम्हारी दासी बन जायगी और सदा तुम्हारी आज्ञाओं का पालन करेगी:-

एक पण्डित जी कथा बांचा करते थे। दक्षिणा में जो कुछ मिलजाता था उसी से उनका जीवन निर्वाह होता था। एक दिन भोजन करके कथा बांचने लगे। बहुत से श्रोता इकट्ठे हुए। किसी धनवान की स्त्री भी आई थी। कथा समाप्त होने पर सब लोग चले गये। वह स्त्री भी चली गई परन्तु अपनी सोने की माला भूल गई। पंडित जी का चित्त उसे देख कर डांवा डोल हुआ और घर का मार्ग लिया। पंडित जी बुद्धिमान् थे विचारने लगे। मुझे तो माला को हाथ न लगाना था। मालूम नहीं मेरा हृदय क्यों अशुद्ध होगया? घर पहुंचते ही माला नौकर के हाथ उस स्त्री के पास भेज दी और रात्रि भर गायत्री का मंत्र जप कर प्रायश्चित करते रहे।

## ४–ब्रह्मचर्य ।

वीर्य को धारण करने का नाम ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य अर्थात् वीर्य धारण श्रेष्ठ तपस्या है। जो पुरुष इस तपस्या में सिद्धि प्राप्त कर उर्ध्वरेता हो जाता है वह मनुष्य नहीं किन्तु देवता है। मृत्यु उसके आधीन रहती है।

रति विषयक वार्त्ता सुनना कहना, क्रीड़ा करना, देखना, एकान्त में स्त्रियों से वार्त्तालाप करना, स्त्रियों के शिर का संकल्प करना, स्त्री पर आसक्त होना और मैथुन कर्म करना मैथुन के आठ अंग हैं। इनसे बचना चाहिये।

वीर्य का एक बिन्दु रक्त के चालीस बिन्दुओं के बराबर होता है। सोचिये तो सही! वीर्य नाश से कितना रक्त एक बार ही शरीर से निकल जाता है और अधमरा ही नहीं किन्तु यम दूत के हवाले कर देता है।

अहार विहार का नियम रखने से यह कार्य सुगम हो जाता है। आहार सात्विक होना चाहिये। खट्टा, तीखा, कड़ुआ बासी और चरपिरा अन्न कभी न खाना चाहिये। अन्न का बड़ा प्रभाव रहता है।

विहार भी नियम के साथ होना चाहिये। नीच विचार वालों की संगति छोड़ कर ऐसे मनुष्यों की सोहबत करना चाहिये जिनसे ज्ञान वृद्धि हो। ऐसे ही मनुष्यों के संग अथवा अकेले ही वायु सेवन करना चाहिये। खेल कूद में यदि दो घंटे व्यतीत किये जाँय तो कोई हानि नहीं है। इससे शरीर ताज़ा और प्रफुल्लित रहता है।

'ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्य लाभः।'

ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा करने से वीर्य लाभ होता है। वीर्य के सञ्चय हो जाने से मस्तिष्क में प्रबल शक्ति सञ्चय होती है। इस महती इच्छा शक्ति से केवल मन की एकाग्रता बढ़ती है और नर देह में ब्रह्मण्य और नारी देह में सतीत्व की निर्मल ज्योति प्रकाशित होती है।

पत्नी समागम करना ब्रह्मचर्य है। महीने में एक बार का नियम सर्व साधारण के लिये सहज साध्य है। उत्तम तो यह है कि इसमें भी, जहाँ तक बन पड़े कमी करे। यदि यह सब कठिन प्रतीत हो तो यह "ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे व्यर्थ वीर्य नष्ट नकरेंगे" यह प्रतिज्ञा अवश्य करलो और जो चाहो सो करो केवल उस वीर्य नाशक बेड़े में मत जाओ। तुम्हें अपूर्व आनन्द प्राप्त होगा। शरीर का तेज, मन का बल, चित्त का स्वास्थ्य बुद्धि का प्रास्वर्य बढ़ेगा और अटूट कार्य शक्ति प्राप्त होगी।

## ५–अपरिग्रह ।

देह रक्षातिरिक्त भोगसाधना स्वीकारोऽपरिग्रहः।

देह की रक्षा की आवश्यकता से अधिक प्राप्त करने की इच्छा त्यागने का नाम अपरिग्रह है। दुराकांक्षा, विलास के पदार्थों की रक्षा तथा याचना आदि को त्यागना अपरिग्रह कहलाता है। मोटी बात यह है कि लोभ को त्याग देना, और संतोष को स्थान देना ही अपरिग्रह है।

'अपरिग्रह प्रतिष्ठायां जन्म कथान्ता सम्बोधः'।

अपरिग्रह की प्रतिष्ठा हो जाने से पूर्व जन्म की बातें याद आने लगती हैं। प्रकृति के पदार्थों में लिप्त रहने के कारण हमारा चित्त डाँवाडोल रहता है इसी से हम पूर्व जन्म की बातें भूल जाते हैं। इस जन्म का भी यही हाल है। आपने देखा होगा जिन बालकों का ध्यान बाहरी टीप टाप, बाल सम्हालने, मांग काढ़ने और वस्त्रादि विलास के पदार्थों की ओर झुका रहता है उन्हें लिखना पढ़ना कुछ भी नहीं आता और वे ज्ञान से बहुत दूर रहते हैं। एक कविने भी कहा है:–

छोड़ यह मांग काटना, नकटाई झूट बूंट।
साधा बनह हो साधा ही अब पैहरन रहे॥

जो ज्ञानी होना चाहें उन्हें त्यागी अवश्य होना चाहिये। प्रकृति के पदार्थों से मनको हटालेने से पूर्व जन्म की बातें याद आने लगती हैं।

दान के साथ दाता के पातक भी आजाते हैं और वे दान लेने वाले के बन्धन का कारण होते हैं। अतएव दान लेना भी बुरा है।

इस संसार में कितने दिन रहने को आये हो? फिर इतना खटराग और आयोजन क्यों? इस प्रकार दृढ़ धारणा कर लेने से मनुष्य निरलोभी हो जाता है:-

एक दिन एक साधू किसी साहूकार की दूकान बन्द करके घर चला गया और भोजन करने लगा! उस समय उसे सुधि आई कि साधु भूखा है उसने कुछ मांगा भी नहीं है! वह तुरंत उठ बैठा और दुकान से एक थाल मिठाई की निकाली और ताला बन्द करने लगा। इसी बीच में साधुने कहा:-बाबा! कुछ हमको भी। यह सुन साहूकार ने एक मुट्ठी देकर कहा:-बाबा! यह हम तुम्हीं को देने के लिये लाये थे परन्तु तुमने मुट्ठी भर मांगा भी दिया। अब हम घर जाते हैं।

यदि साधुने याचना न की होती तो उसे भरा थाल अवश्य मिलता। मन को वश में न रख सकने के कारण उसे केवल एक मुट्ठी भर ही हाथ लगा। किसी ने ठीक कहा है:-

बिन मांगे मोती मिलें, मांगे मिले न भीख।

अपूर्ण

---

## समालोचना

भक्त भारती-प्रकाशक गीता प्रेस गोरखपुर, इस पुस्तक में ध्रुव, प्रह्लाद, गजेन्द्र, शबरी, अम्बरीष अजामील, कुन्ती आदि सात भागवतों के चरित्र सुन्दर सरल पद्य में चित्रित किये है। मूल्य ।)

माता-प्रकाशक गीता प्रेस गोरखपुर, यह पुस्तक श्री अरविन्द घोष की 'मदर' नामक अंग्रेजी पुस्तक का अनुवाद है। मूल्य ।)

देवर्षि नारद-लेखक चतुर्वेदी पं० द्वारका प्रसाद शर्मा, प्रकाशक गीता प्रेस गोरखपुर, इस पुस्तक में देवर्षि नारद की पुण्यमयी गाथाओं को मौलिक भाषा में लिखा है मूल्य ॥)

तुलसीदल-यह श्रीहनुमान प्रसाद जी पोद्दार द्वारा लिखित २६ लेखों का उत्तम संग्रह है। मूल्य ॥)

श्रीमद्भगवद्गीता-प्रकाशक गीता प्रेस गोरखपुर-इस में मूल, नीचे शांकर भाष्य और उसके सामने शांकर भाष्य का सरल हिन्दी अनुवाद दिया गया है। मूल्य २॥)

---

## भजन

बड़ी है रामनाम की ओट
शरण गये प्रभु काउ देत नहीं करत कृपा की कोट॥
बैठत सभा सबै हरिजू की कौन बड़ो को छोट॥
सूरश्याम पारस के परसे मिटत लोह को खोट॥

२

चलत देखि यशुमति सुख पावे॥
ठमुक ठमुक धरनी धर रेंगत जननी आंख दिखावे॥
देहरि लौं चलि जात बहुरि फिरि फिरि इतही को आवे

गिरि २ परत बनत नहिं लांघत सुरमुनि सोच करावे
कोटि ब्रह्माण्ड करत छिन भीतर रहत बिलम्ब न लावे
ताको लिये नंद की रानी नाना खेल खिलावे ॥
तब यशुमति कर टोकि श्याम को क्रम२ के उतरावे।
सूरदास प्रभु देखि२ सुरनर मुनि मन बुद्धि भुलावे ॥

३

मैया मोहि दाउ बहुत खिजायो ॥
मो सौं कहत मोल को लीनो तोहि जसुमति कब जायो
कहा कहौं एहि रिस के मारे खेलन को नहि जातु।
पुनि २ कहत कौन है माता को है तुमरो तातु ॥
गोरे नन्द जसोदा गोरी तुम कत श्याम सरीर।
चुटकी दै दै हंसत ग्वाल सब सिखे देत बलबीर ॥
तू मोही को मारन सीखी दाउहि कबहु न खीझै।
मोहन को मुख रिस समेत लखि जसुमति सुनि२ रीझै
सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई जनमत ही को धूत।
सूरश्याम मोहि गोधन की सौं हौं माता तू पूत ॥

४

मैया री मोहिं माखन भावै।
मधुमेवा पकवान मिठाई मोहि नहि रुचि आवै।
बृजयुवती इक पाछे ठाढी सुनति श्याम की बात ॥
मन २ कहति कबहुं मेरे घर देखौं माखन खात ॥
बैठ जात मथनियां के ढिग मैं तब रही छिपानी ॥
सूरदास प्रभु अन्तर्यामी ग्वालिन मन की जानी ॥

५

माखन खात पराये घर को ॥
नितप्रति सहस मथानी मथिये,
मेघ शब्द दधि माट घमरको ॥
कितने अहीर जियत हैं मेरे गृह,
दधि लै मथ बेचत मही महर को ॥
नव लख धेनु दुहत हैं नित प्रति,
बड़ो भाग्य हैं नन्द महर को ॥
ताके पूत कहावत हौं तू,
चोरी करत उघारत फरको ॥
सूरश्याम कितनो तुम खैहौं,
दधि माखन मेरे जहा तहाँ ढरको ॥

६

मैया मेरी मैं नहीं माखन खायो।
भोर भयो गैयन के पीछे मधुबन मोहि पठायो ॥
चार पहर बंशी बट भटक्यो सांझ परी घर आयो ॥
ग्वाल बाल सब बैर पड़े हैं बरबस मुख लपटायो ॥
तू जननी मन की अतिभोरी उनके कहे पतियायो ॥
जिय तेरे कछु भेद भयो है जान परायो जायो ॥
यह ले अपनी लकुट कमरिया, बहुतहि नाच नचायो
सूरदास तब विहँसि यशोदा लै सुत कंठ लगायो ॥

७

प्रथम सनेह दुहुंन मन जान्यो।
सैन२ कीन्ही सब बातें गुप्तप्रीति शिशुता प्रगटान्यो ॥
खेलन कबहु हमारे आवहु नन्द सदन बृज गांव।
हारे भाई टेरि मोहि लीजो कान्ह है मेरो नांव ॥
जो कहिये घरि दूरि तुम्हारो बोलत सुनिए टेर।
तुमहिं सौंह बृषभानु बबा की प्रात साँझ एकफेर ॥
सूधी निपट देखियत तुमको ताते करियत साथ।
सूरश्याम नागर उत नागरि राधा दोउ मिलिगाथ ॥

८

पनघट रोके रहत कन्हाई।
यमुना जल कोउ भरन न पावे देखत ही फिरि जाई ॥
तबहि श्याम इक बुद्धि उपाई आपुन रहे छुपाई ॥
तब ठाढे जे सखा संग के तिनको लिये बुलाई ॥
बैठारे ग्वालन को द्रुमतर आपुन फिरि २ देखत ॥
बड़ी बार भई कोउ न आई सूरश्याम मन लेखत ॥